



विचार गंगा

ॐ आचाराम त्रिपाठी

विचार गंगा

लखनऊ प्रदेश भाषा विधि
के सौजन्य से

डॉ० आशाराम त्रिपाठी

आशुतोष प्रकाशन

लखनऊ

© डॉ० आशाराम त्रिपाठी

● विचार गंगा

● प्रथम संस्करण, 1991

● मूल्य : सत्तर रुपये

● प्रकाशक : आशुतोष प्रकाशन

ह्री-1102 ओ० सी० मार० कॉम्प्लेक्स,

विद्यान सभा मार्ग,

लखनऊ-226001

● मुद्रक : आकर्ष ग्रफिक्स प्रिन्टर्स,

डालीगंज, लखनऊ

उत्तर प्रदेश शासन द्वारा प्राप्त आर्थिक आर्थिक सहायता से प्रकाशित ।

प्रातःस्मरणीय गुरुवर्य

प्रो० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय

और

प्रो० सरस्वतीप्रसाद चतुर्वेदी

की

पुण्यस्मृति

में

विचार गंगा के प्रति

विचार से अधिक ठोस वस्तु ब्रह्माण्ड में नहीं है। इसीलिए महान् विचार जब वे कर्मरूप में परिणित हो जाते हैं तब महान् कृतियाँ बन जाते हैं। जीवन में क्षण-क्षण विचार की आवश्यकता होती है क्योंकि भौतिक शक्ति से आध्यात्मिक शक्ति बढ़कर है। सारी दुनिया विचारों से ही शासित होती है। मनुष्य अपने मन में जैसा सोचता है वैसा ही बनता है। विचार वे साधन हैं जो सभ्यता का उन्नयन करते हैं वे क्रान्ति पैदा करते हैं।

इन्हीं शक्तिशाली विचारों की गंगा में अबगाहन करने की बलवती इच्छा ने ही प्रेरणा दी जिसका फल आपके सामने है।

—आशाराम त्रिपाठी

विषय-सूची

	पृष्ठ
अपनत्व	७
अमल	६
अहंकार	११
अहिंसा	१३
आज	१४
आत्मा	१६
आनन्द	१८
इज्जत	२०
उदारता	२२
एकता	२४
कष्ट की महत्ता	२६
काम	२८
गुण	३०
त्याग	३२
दया	३४
दरिद्रता	३६
दाता	३७
दुःख	३६
दोष	४१
नम्रता	४३
परिश्रम	४५
पवित्रता	४७
पाप	४६
पुरुषार्थ	५१
प्रश्न	५३

विचार गंगा

प्रेम	५५
फल	५७
बुद्धि	५६
बुराई	६१
भलाई	६३
मधुर वचन	६५
मित्र-अमित्र	६७
लालच	६६
विचार	७१
सन्तोष	७३
समय	७५
सुख	७७
ज्ञानार्णव से संग्रहीत विचार	७६

अपनत्व

अपना कौन है, पराया कौन है। इस पर विचार करना बहुत आवश्यक है।
हमारी भारतीय संस्कृति में समूची सृष्टि को ही एक परिवार माना गया है।
हितोपदेश का कथन है—

‘अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

वास्तव में अपने और पराये का विचार कम बुद्धि वाले व्यक्ति ही करते हैं।
जिनके हृदय विशाल होते हैं, जिनकी भावनाएँ उदात्त होती हैं, जिनकी वाणी सदा
अमृत की वर्षा करती है उनके लिए सब अपने ही होते हैं।

अपना सब तो सूर्य की भाँति समभाव और निर्मल होना चाहिए। गुरुदेव
रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में—

सूरजमुखी फूल वेनाम फूल को अपना सगा मानने में शर्माया।

सूरज उगा और उस पर यह कहते हुए मुस्काया,

‘अच्छे तो हो तुम, मेरे प्यारे?’

क्या ही अच्छा होता यदि दुनिया के सभी देश सबको अपना समझकर, मित्र
बनकर सुख से रहते। जो सुख से दूसरे को अपना बनाने में है वह परायी भावना से
कैसे मिल सकता है?

इस संसार में सब अपने को प्रिय समझते हैं। शेखसादी का कहना है—

‘हर आदमी अपने मत को सच्चा और अपने बच्चे को अच्छा समझता है।

इसलिए दूसरे के मत या बच्चे को बुरा कहना उचित नहीं है।

यह बहुत अच्छी बात होगी यदि हम अपने जैसा दूसरे को भी समझें। दूसरे
के सुख-दुःख को अपना समझकर हम अपनत्व स्थापित कर सकते हैं, दूसरों के अधिक
निकट आ सकते हैं।

आज की दुनिया में हृदय पक्ष शिथिल होता जा रहा है। स्वार्थपरता बढ़ती
जा रही है। सहन करने का माहा कम होता जा रहा है। छोटी-छोटी बात पर लोग
आग बबूला हो जाते हैं। धैर्य है नहीं। मानव का सबसे बड़ा अस्त्र विवेक भी अब
काम नहीं करता। अच्छे-बुरे का विचार करने वाली शक्ति ही विवेक है। उसका
उपयोग कम हो गया है।

अपने और पराये की पहचान कैसे हो?

इस सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है—

यदि पराया भी अपना हित चाहता है तो वह बन्धु है और भाई भी यदि अहित चाहता हो तो उसे गैर समझना । जैसे देह का रोग अहित करता है और जंगल की ओषधि हितकारी है ।

यदि हम ध्यान से देखें तो अपनत्व के लिए प्रेम अनिवार्य शर्त है । स्वामी रामतीर्थ के शब्दों में—

‘प्रेम करो और लोग तुमसे प्रेम करेंगे । बस, यही लक्ष्य है । हाथ, यदि जीवित रहना चाहता है, तो उसे शरीर के अन्य अंगों से प्रेम करना होगा । यदि वह अपने को सबसे अलग कर ले और सोचे कि मेरी कमाई से दूसरे अंग क्यों लाभ उठायें, तो हाथ का काम हो चुका । हाथ केवल तभी फूल-फल सकता है जब वह व्यवहारतः शरीर के दूसरे अंगों के साथ अपनी वास्तविक आत्मीयता का अनुभव करे और अपनी भलाई को शरीर के अन्य अंगों की भलाई से सम्पूर्ण शरीर की भलाई से किसी भी प्रकार पृथक् न समझे ।

समस्त प्राणियों के प्रति सहानुभूति रखना, उनसे प्रेम करना हमारा धर्म है ।

जब हम दूसरे के दुःखों से दुःखी होंगे, दूसरे की विपत्ति में उसकी सहायता करेंगे तभी सही अर्थों में हम भारतीय हो सकते हैं । तभी हम सबको अपना बना सकते हैं । इसके अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं ।

अमल

हितोपदेश में कहा गया है—

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः,
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् ।
सुचिन्तितं चौषधमातुराणां,
न नाममात्रेण करोत्यरोगम् ॥

अर्थात् शास्त्रों का ज्ञान रखते हुए भी लोग मूर्खतापूर्ण आचरण करते हैं क्योंकि वे उस ज्ञान को व्यवहार में नहीं लाते । जो व्यक्ति ज्ञान को व्यावहारिक रूप देकर अपना काम करता है वह विद्वान् है क्योंकि किसी रोग विशेष की दवा के नाम ले लेने से ही वह रोग को थोड़े ही दूर कर देगी । उसका तो सेवन किया जायेगा तभी रोग दूर होगा ।

महात्मा बुद्ध ने भी कहा है कि जो व्यक्ति अनेक शास्त्रों को पढ़ता है किन्तु उनके अनुसार अमल नहीं करता वह उस ग्वाले के समान है जो दूसरों की गायों को ही गिनता रहता है ।

ज्ञान को क्रिया रूप में लाना बहुत आवश्यक है । अमल करने से ज्ञान परिपक्व होता है और उसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं रहता ।

फ्रेकलिन के अनुसार अपने अमल को सच्चा रखो और बदनामी की परवाह न करो; गन्दगी मिट्टी की दीवाल से चिपट सकती है, पालिश किये हुए संगमरमर से नहीं ।

जब तक ज्ञान को जीवन में उतारा नहीं जाता तब तक हमारे लिए उसका कोई महत्त्व नहीं ।

इसीलिए शेखसादी ने कहा है—

जो विवेक के नियमों को सीख लेता है परन्तु जीवन में उन्हें उतारता नहीं वह उस आदमी की तरह है जिसने अपने खेतों में मेहनत की मगर बीज नहीं डाला ।

हजरत मुहम्मद साहब ने तो विवेक के अनुसार काम करने को बहुत महत्त्व दिया है । उनका कहना है—

“मैं कोई चीज नहीं हूँ सिवाय खुदा के भेजे हुए एक मनुष्य के । न मेरे पास अल्लाह के खजाने हैं, न मैं ग्रेब का इल्म रखता हूँ और न मैं फरिश्ता हूँ । मैं केवल उस पर चलता हूँ जो अल्लाह ने मेरे घट में बिठा दिया है ।”

एक विचारक का कहना है “जितना हमें ज्ञान है उस पर अमल करने से वह हकीकत भी रोशन हो जाती है जिसे हम इस वक्त नहीं जानते।”

थोरो के अनुसार “अगर तुम किसी को यह इत्मीनान दिलाना चाहते हो कि वह गलती पर है तो सच्चाई को करके दिखाओ। लोग देखी हुई चीज पर विश्वास करते हैं, उन्हें देखने दो।

तिरुवल्लुवर का विचार है—

“किसी निश्चय पर पहुँचना ही विचार का उद्देश्य है और जब किसी बात का निश्चय हो गया तो उसको कार्यरूप में परिणत करने में देर करना भूल है।”

ज्ञान को अमल में लाना सरल कार्य नहीं है। इस संसार में बहुत कम लोग मिलेंगे जो ज्ञान को व्यावहारिक रूप देते हों। इसी बात पर गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है—

पर उपदेस कुसल बहु तेरे।

जे आचरहि ते नर न घनेरे ॥

ऐसे बहुत से लोग मिलेंगे जो दूसरों को उपदेश देने में बहुत कुशल होते हैं, उपदेश देते हुए अघाते नहीं हैं परन्तु उपदेश के अनुसार काम करने वाले लोग बहुत कम हैं।

कहना आसान है किन्तु करना कठिन। तभी तो संत कबीरदास ने कहा है—

कथनी मीठी खाड़ सी करनी बिस की लोय।

कथनी तजि करनी करै बिस से अमरित होय ॥

अहंकार

भर्तृहरिने नीतिशतक में कहा है—“जब मैं थोड़ा जानता था तब मैं हाथी के समान मदान्ध था। उस समय ‘मैं सर्वज्ञ हूँ’—इस प्रकार मेरा मन अहंकार से भरा रहता था। जब मैं विद्वानों के सम्पर्क में आया और उनसे मुझे थोड़ा-थोड़ा ज्ञान मिला तब मुझे ऐसा लगा कि “मैं मूर्ख हूँ” जब मुझे ऐसा अनुभव हुआ उसके बाद मेरा मद ज्वर के समान उतर गया।

बात बहुत ही ध्यान देने योग्य है क्योंकि हम देखते हैं कि जो व्यक्ति कुछ नहीं जानता उसे सरलता से समझाया जा सकता है, उसे संतुष्ट किया जा सकता है। जो विषय का अच्छा जानकार है उसको और भी सरलता से संतुष्ट किया जा सकता है क्योंकि वह किसी भी बात को बहुत ही शीघ्र समझ लेता है। इसके विपरीत जिसे किसी विषय का थोड़ा ज्ञान है, किन्तु वह अपने को परम विद्वान् समझता है, उसे मनुष्य क्या ब्रह्मा भी संतुष्ट नहीं कर सकते क्योंकि वह अपने को संसार का सबसे बुद्धिमान् व्यक्ति समझता है। वह जो कहे वही सही है, बाकी लोग जो कहते हैं वह सब गलत है।

श्री रामकृष्ण परमहंस का कहना है -

“वह अहंकार अहंकार नहीं है जो आत्मा की शान बखाने। वह नम्रता नम्रता नहीं है जो आत्मा को हीन बनाये।”

स्वामी विवेकानन्द अहंकार को एक बाधक तत्त्व के रूप में स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं—

“अगर तुम्हारा अहंकार चला गया है तो किसी भी धर्म पुस्तक की एक पंक्ति भी पढ़े बगैर, किसी भी मन्दिर में पैर रखे बगैर तुमको जहाँ बैठे हो वहीं मोक्ष मिल जाएगा।

हम अपने को बहुत महत्त्व देते हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए एक विचारक ने कहा है—

“अहंकार को लगता है कि “मैं न हुआ तो सारी दुनिया कैसे चलेगी” और सही बात यह है कि मैं ही क्या सारा जग भी न हुआ तो भी दुनिया चलती रहती दिखती है।” इस दुनिया में एक दूसरे के सहयोग से ही काम चलता है। जो यह सोचता है कि वह दुनिया के बगैर अपना काम कर लेगा, वह धोखे में है, रोशे ने इसी बात को बहुत ही प्रभावपूर्ण ढंग से कही है—

“जो यह कल्पना करता है कि वह दुनिया के बगैर अपना काम चला लेगा, अपने को धोखा देता है, लेकिन जो यह समझता है कि दुनिया का काम उसके बगैर नहीं चल सकता वह और भी बड़े धोखे में है।”

घमण्डी या अहंकारी होने पर व्यक्ति अपने मार्ग से विचलित हो जाता है।
ऐसों को आगाह करते हुए हाफिज साहब ने कहा है—

‘अगर तरक्की करके तुम बड़े आदमी बन जाओ तो भी तुम अपने रास्ते से ढिगो मत। तुम कमान से छोड़े हुए तीर के समान हो जो थोड़ी देर हवा में उड़कर जमीन पर गिर जाता है।’

अहंकार वह अवगुण है जिससे मनुष्य का व्यक्तित्व उभरने नहीं पाता। इसी लिए हमारे विचारकों ने लोगों को अहंकार और लोभ से विशेष रूप से सावधान किया है।

एक विचारक ने बहुत ही अच्छी बात बतायी है—

“आदमी जब कपड़े पहन लेता है तब ऐसा मालूम होता है मानो वह कभी नंगा ही नहीं था और जब अमीर हो जाता है तब ऐसा मालूम होता है मानो वह कभी गरीब ही नहीं था।”

अहिंसा

हमारे पास दो अमर वाक्य हैं। 'अहिंसा परम धर्म है' और 'अहिंसा के बिना दूसरा कर्म नहीं।'।

अहिंसा को परिभाषित करते हुए स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—'अहिंसा माने अपनी वाणी या कार्य से किसी का भी दिल न दुखाना, किसी का अनिष्ट तक न सोचना।'।

सत्य और अहिंसा के व्रती महात्मा गांधी के विचार से अहिंसा की शक्ति अमाप है, वैसी ही अहिंसक की है। अहिंसक खुद कुछ नहीं करता, उसका प्रेरक ईश्वर होता है, इसलिए भविष्य में ईश्वर उससे क्या करा लेगा, यह वह खुद कैसे बताएगा।

अहिंसा के सामने हिंसा निकम्मी हो जाती है। अगर आज तक ऐसा नहीं हुआ है तो उसका कारण यह है कि हमारी अहिंसा दुर्बलों और भीषणों की थी। बापू ने एक स्थान पर कहा है 'ऐसा अनमोल अहिंसा धर्म मैं शब्दों के द्वारा नहीं प्रकट कर सकता। खुद पालन करके ही उसका पालन कराया जा सकता है। मेरी अहिंसा संसार के प्रति प्रेम माँगती है। इसीलिए अहिंसा को परम धर्म कहा गया है। वह पशुबल से अनन्त गुना महान् और उच्च है।'।

सत्य के दर्शन बगैर अहिंसा हो ही नहीं सकती—

अहिंसा के सम्बन्ध में महात्मा बुद्ध का उपदेश स्मरणीय है। 'जैसे मैं हूँ, वैसे ही वे हैं और जैसे वे हैं, वैसे ही मैं हूँ'। इस प्रकार सबको अपने जैसा समझकर न तो किसी को मारो और न मारने को प्रेरित करो, अपनी प्राणरक्षा के लिए जान-बूझकर किसी प्राणी का वध न करो क्योंकि जहाँ मन हिंसा से मुड़ता है, वहाँ दुःख अवश्य ही शान्त हो जाता है।'।

तिरुवल्लीवर ने अहिंसा के सम्बन्ध में बहुत ही महत्वपूर्ण बात कही है।

"अगर तुम्हारे एक लफ्ज से भी किसी को पीड़ा पहुँचती है तो तुम अपनी सब नेकी नष्ट हुई समझो। इसीलिए सन्त कबीर ने कहा है कि बुराई के बदले भलाई करो दूसरे का बुरा चाहने वाला अपनी बुराई से स्वयं ही कष्ट पाता है।

जो तोको काँटा बुँदा ताहि बोउ तू फूल।

तोको फूल को फूल है वाको है तिरसूल ॥

इसीलिए दुर्बल व्यक्ति को सताना किसी के भी हित में नहीं—

दुर्बल को न सताइए जाकी मोटी हाय।

मुए खाल को साँस सो सार भसम ह्वै जाय ॥

आज

काल्हि करे सो आज कर,
आज करे सो अब्ब ।
पल में परलै होत है,
बहुरि करोगे कबब ॥

सन्त कबीर की वाणी हमें क्षण-क्षण यही बताती है कि भाई चेतो, मात्र खाने पीने और सोने में ही समय न गवाँओ। तुम आलस्य वश कह देते हो—यह काम आज नहीं, कल करूँगा, अमुक काम अभी नहीं बाद में करूँगा। ऐसा करना और सोचना ठीक नहीं।

वास्तव में आज का बहुत बड़ा महत्व है। एक विचारक के शब्दों में 'एक आज दो कल के बराबर है।' इसलिए किसी भी काम को टालने की अपेक्षा उसे कर डालना ही हितकर है क्योंकि जो काम कभी भी हो सकता है, वह कभी नहीं हो सकता है। जो काम अभी होगा वही होगा, जो शक्ति आज के काम को कल पर टालने में खर्च हो जाती है उसी शक्ति के द्वारा आज का काम आज किया जा सकता है।

हमारे विचारकों, सन्त महात्माओं, पीर और फकीरों ने यह कहा है कि अच्छा काम तुरन्त कर डालो, बुरा काम टालते जाओ। अच्छे काम में आलस्य कभी न करो। तभी तो महात्मा बुद्ध कहते हैं—'आज ही संकल्प लो आज से अपने चित्त में विकार नहीं आने दूँगा, किसी से कटु वचन नहीं बोलूँगा, सभी दोष दूर करके मैत्री भावना से इस संसार में रहूँगा।'

यदि आज हम यह संकल्प लेकर इस पर चलने लगे तो देखते-देखते एक बड़ा सुखद परिवर्तन हमारे समाज में आ जाय।

हमें तो आज के प्रति निष्ठावान होना पड़ेगा और इसी में अपना, अपने समाज और देश का कल्याण निहित है क्योंकि आज का दिन हमारा है। बीता हुआ कल चला गया और आने वाला कल अभी पैदा नहीं हुआ।

कल शब्द आलसी व्यक्ति की डायरी में होता है। कर्मठ और कर्तव्य परायण व्यक्ति तो आज में ही निवास करता है। महात्मा बुद्ध का यह कथन हमारे लिए बहुत ही प्रेरणादायक है।

"एक दिन आलसी आदमी इस कारण काम नहीं करता कि आज बड़ी

कड़ाके की सर्दी पड़ रही है और दूसरे दिन बेहद गर्मी के कारण काम से जी चुराता है, किसी दिन कहता है कि अब तो शाम हो गयी है, कौन काम करने जाय; और किसी दिन यह कहता है कि अभी तो बहुत सबेरा है, काम का समय अभी कहाँ हुआ है।'

हमारी काम को टालने की आदत ठीक नहीं। योगवासिष्ठ के अनुसार—जो कुछ श्रेयस्कर है, जो कुछ भलाई का काम है उसे आज ही करो, बुढ़ापे में क्या कर सकोगे ? तब तो तुम्हारा शरीर तक तुम्हारे लिए बोझ हो जायेगा।

एक विचारक ने ठीक ही कहा है—

“अच्छी तरह जिया हुआ आज हर गुजरे हुए कल को आनन्द का स्वप्न, और हर आने वाले कल को आशा का दर्शन बना देता है।”

आत्मा

श्वेतकेतु ने अपने पिता उद्दालक आरुणि से यह जानना चाहा कि निद्रा क्या है ? उद्दालक ने कहा—सौम्य ! मैं तुम्हें बताता हूँ—

“जब मनुष्य के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि वह सो रहा है तब उस अवस्था में यह जानना चाहिए कि विश्वात्मा, जो सत् है, उससे उसका तादात्म्य हो गया है अर्थात् उस अवस्था में उसकी बाह्य चेतना कुछ नहीं रह जाती और वह अन्तश्-चेतना के साथ एक रूप हो जाती है। उस अवस्था में वह अपने वास्तविक अपनेपन को प्राप्त हो जाता है। इसीलिए सोये हुए व्यक्ति के लिए कहा जाता है कि ‘स्वप्न’ अर्थात् ‘अपनी अवस्था’ में है।

“जिस प्रकार डोर से बँधी हुई चिड़िया फड़फड़ाती हुई कभी इस ओर और कभी उस ओर उड़ने की चेष्टा करती रहती है और अन्त में विश्राम के लिए डोर से बंधे हुए स्थान पर ही आकर बैठती है, उसी प्रकार मन इधर-उधर भटकने के बाद अन्त में विश्राम के लिए कोई दूसरा स्थान न पाकर प्राण का आश्रय ग्रहण करता है। पुत्र ! मन की डोर प्राण ही है।”

श्वेतकेतु ने पूछा “पिता जी, मुझे भूख और प्यास के विषय में बताने की कृपा करें।”

उद्दालक ने कहा “जब मनुष्य के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि ‘वह भूखा है’ तो उसका अर्थ यह है कि उसके शरीर के भीतर अन्न और जल की कमी है। वह अन्न ग्रहण करता है और उस अन्न को पानी उसके गले के नीचे उतारता है। इसीलिए पानी को ‘अशनाय’ अर्थात् अन्न को नीचे ले जाने वाला कहा जाता है। इसलिए इस शरीर का कारण भी वही है।”

श्वेतकेतु ने प्रश्न किया—“पिता जी वह कारण क्या है ?”

उद्दालक ने उत्तर दिया—“जल को छोड़कर दूसरा कौन कारण हो सकता है ? अन्न को उत्पन्न करने वाला जल है और शरीर अन्न से उत्पन्न होता है। इसीलिए शरीर का मूल कारण जल ही है जल की उत्पत्ति तेज से होती है और तेज का मूल कारण सत् अथवा सत्य है। इसी प्रकार इस विश्व के समस्त प्राणियों की उत्पत्ति का मूल कारण सत्य ही है।

जब मनुष्य इस संसार को छोड़ देता है तब उसकी वाणी मन में विलीन हो

जाती है, मन प्राण में विलीन हो जाता है, प्राण तेज में लीन हो जाता है और तेज परब्रह्म में मग्न हो जाता है।

“समस्त विश्व का प्राण वही परब्रह्म है। वह परब्रह्म सत्य है। वही इस विश्व की आत्मा है। हे श्वेतकेतु ! तुम स्वयं भी आत्मा हो।”

उपनिषद् का कहना है “यह आत्मा प्रवचन से नहीं मिलता।” गीता में आत्मा को ही सब कुछ कह दिया गया है। “इन्द्रियाँ बहुत सूक्ष्म हैं, इन्द्रियों से अधिक सूक्ष्म मन है, मन से अधिक सूक्ष्म बुद्धि है, बुद्धि से भी अधिक सूक्ष्म आत्मा है। यह आत्मा ही सब कुछ है।”

आत्मा को परिभाषित करते हुए श्री रामकृष्ण परहंस कहते हैं। ‘जिसे वेदान्ती ब्रह्म कहते हैं, उसी को योगी आत्मा कहते हैं, और भक्त भगवान् कहते हैं।’ श्री अरविन्द घोष ने आत्मा के विषय में कहा है—

“जिसे अपने जीवन के लिए मन, प्राण और शरीर की चिन्ता नहीं, जिसे अपने ज्ञान के लिए मन और इन्द्रियों की चिन्ता नहीं, जिसे अपने आनन्द के लिए पदार्थ मात्र के बाह्य स्पर्श की आवश्यकता नहीं, उसी तत्त्व को ‘आत्मा’ नाम दिया गया है।”

स्वामी रामतीर्थ के शब्दों में “जब कोई विश्वात्मा को निजात्मा ही अनुभव करने लगता है तब सारा ब्रह्माण्ड उसकी इस तरह सेवा करता है जैसे उसका शरीर।”

आनन्द

आनन्द वह रस है जो जीवन को सुखी और प्रकाशमय बनाता है। एक विचारक के शब्दों में शरीर वीणा है और आनन्द संगीत। यह जरूरी है कि यंत्र ठीक रहे। यदि हम ध्यान से देखें तो हमें पता चलेगा कि सिवाय पाप के हर चीज में कुछ न कुछ आनन्द है। श्रीरामकृष्ण परमहंस ने विश्वास को आनन्द का मूल बताया है—

पार्वती ने शिव जी से पूछा “स्वामी ! अनन्त और सर्वग्राही आनन्द का मूल क्या है ?”

शिव ने उत्तर दिया “आनन्द का मूल है विश्वास” योगवासिष्ठ में बताया गया है कि मन की शान्ति से ही आनन्द मिलता है—

“तर्कं शक्ति से मनुष्य को सत्य का ज्ञान होता है, सत्य से वह मन की शान्ति पाता है, और मन की शान्ति से उसका दुःख दूर होता है।”

जब हम किसी व्यक्ति के काम में हाथ बटाते हैं, सुख-दुःख में उसकी मदद करते हैं, इसमें हमें जो सुख मिलता है वही आनन्द है। आनन्द कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो एक जगह स्थिर है और जब हम चाहें उसे प्राप्त कर लें। आनन्द क्रियाशीलता में है; हमारी प्रकृति की बनावट ही ऐसी है, वह बहता हुआ चश्मा है, रुका हुआ तालाब नहीं। आनन्द प्राप्ति के लिए शुद्ध मन का होना बहुत जरूरी है। महात्मा बुद्ध ने तो कहा ही है—

“यदि कोई मनुष्य शुद्ध मन से बोलता या काम करता है, आनन्द उसके पीछे साये की तरह चलता है जो कि उससे कभी अलग नहीं होता।”

अब प्रश्न उठता है कि क्या इन्द्रियों को तृप्त करना ही आनन्द है या इससे भी ऊपर कोई श्रेणी है ? इस प्रश्न का उत्तर स्वामी विवेकानन्द के इस कथन में मिल जायेगा।

“पशु का आनन्द इन्द्रिय तृप्ति है और मनुष्य का आनन्द बुद्धिगत है।”

एक आनन्दमय मनुष्य से मिलना सौ रुपये का नोट पा जाने से अच्छा है। वह कल्याण की किरणें बाहर फेंकने वाला केन्द्र है और उसका किसी कमरे में दायित्व होना ऐसा है मानों एक शमा और जला दी गयी।

सच्चा आनन्द एकान्त प्रिय है, शान और शोर का दुश्मन। एक तो वह आत्म-चिन्तन से मिलता है और दूसरे थोड़े से चुने हुए मित्रों की मित्रता और बातचीत से दूसरे के साथ हाथ बटाने से आनन्द और भी बढ़ जाता है। एमर्सन के विचार से

जीवन का आनन्द जीने वाले आदमी के अनुरूप है, काम या जगह के अनुरूप नहीं। पेश्तर इसके कि हम औरों का आनन्द से अभिषेक कर सकें हमें स्वयं आनन्द का ऋज्वारा बन जाना होगा।

कुछ लोगों का विचार है कि आनन्द धन वैभव से मिलता है। ऐसे लोगों को रस्किन के इस विचार पर ध्यान देना चाहिए—

‘आनन्द परिग्रह के बढ़ाने से नहीं, दिल के बढ़ाने से बढ़ता है।’

उच्चकोटि का आनन्द कौन प्राप्त कर सकता है ? मनु कहते हैं—

“जो मनुष्य अपनी आत्मा में परमात्मा को देख सकता है और सब तरफ सम-भाव से देखता है, वही सर्वोत्कृष्ट आनन्द प्राप्त करता है।”

आनन्द कुरूपता को दूर कर देता है और सुन्दरता को भी सौन्दर्य प्रदान करता है। जो आनन्द पूर्णतया बाहर से आता है वह मिथ्या, अत्यल्प और क्षणिक है। जो आनन्द अन्दर से आता है वह डाली पर लगे सुगन्धित गुलाब के समान है, अधिक मधुर, सुन्दर और स्थायी।

इज्जत

रहिमन पानी राखिये,
बिन पानी सब सून ।
पानी गये न ऊबरहि,
मोती, मानुस, चून ॥

कविवर रहीम का यह दोहा बहुत ही गम्भीर अर्थ का बोध कराता है ।

हमारे जीवन में पानी का बहुत महत्त्व है । इसीलिए हवा और पानी को जीवन कहा जाता है । बिना पानी मोती की स्थिति कहाँ, बिना पानी चून भी खराब हो जाता है और बिना पानी अर्थात् बिना इज्जत के मनुष्य भी किसी काम का नहीं । यदि समाज में इज्जत है तो आर्थिक रूप से कष्टों में रहता हुआ भी मनुष्य सुख से जी सकता है और यदि धनवैभव से सम्पन्न लेकिन किन्हीं दोषों के कारण समाज उस व्यक्ति को इज्जत नहीं देता तो फिर धन वैभव का क्या मूल्य ? इसलिए कवि रहीम ने कहा है कि अपनी इज्जत बचा के रखो वे इज्जत की कहीं 'पूछ नहीं' ।

मान-बड़ाई और सुख-चैन शायद ही कभी साथ रहते हैं । इज्जत कहीं पैदा नहीं होती, जो तुम्हारा काम है उसे अच्छी तरह करो इसी में सारी इज्जत है ।

अब सवाल यह है कि आज के युग में मनुष्य इज्जत के साथ रहे कैसे । पग-पग पर विघ्न-वधाएँ खड़ी रहती हैं । सुकरात ने इस सम्बन्ध में बहुत ही अच्छी सलाह दी है । उनका कहना है—

“दुनिया में इज्जत के साथ जीने का सबसे छोटा और सबसे श्रुतिया उपाय यह है कि हम जो कुछ बाहर से दिखना चाहते हैं वैसे ही वास्तव में हों भी ।”

आजकल की दिखावे की दुनिया में असलियत का पता तब चलता है जब व्यक्ति बेनकाब हो जाता है ।

पानी वाला आदमी, इज्जतदार आदमी एक ही बार मरता है लेकिन जिसे अपनी इज्जत आदर का ध्यान ही नहीं है वह बार-बार मरता है ।

अपनी इज्जत सुरक्षित रखने के लिए व्यक्ति को बहुत परिश्रम करना पड़ता है, परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ता है, बड़ा झुकावला करता पड़ता है । हमें चाहिए कि हम अपने सद्गुणों से सम्मान प्राप्त करें ।

एक विचारक ने कहा भी है—

“आदमी के लिए यह शर्म की बात है कि वह केवल अपने शरीर पूर्वजों के कारण ही इज्जत चाहे, ओर खुद अपने सद्गुणों से उसका हकदार बनने की कोशिश करे।”

वास्तव में इज्जत ही जिन्दगी है। इज्जत नहीं तो जिन्दगी किस काम की। शेक्सपियर के शब्दों में—

“मेरी इज्जत मेरी जिन्दगी है दोनों साथ साथ बढ़ती हैं, मेरी इज्जत ले लो तो मेरी जिन्दगी खत्म हो जाय।”

उदारता

‘यह अपना है और यह पराया है—इस प्रकार की बात छोटे मन वाले व्यक्ति करते हैं। उदार व्यक्ति के लिए कौन अपना, कौन पराया—उनके लिए तो सारा संसार ही एक परिवार के समान है।’ हितोपदेश का यह कथन बहुत ही उपयुक्त है।

सचमुच जो उदार होते हैं उनके हृदय विशाल होते हैं। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने झरने के माध्यम से इसी बात को बड़े ही सुन्दर ढंग से कहा है—

झरना गाता है—“मैं खुशी में अपना सारा पानी देता हूँ, जो कि प्यास के लिए इसका जरा सा ही काफी है।”

तिरुवल्लुवर का कहना है—

“दिलदार आदमी का वैभव गाँव के बीचोबीच उगे हुए और फलों से लदे हुए वृक्ष के समान होता है। वृक्ष को तो देखिये लोग उस पर ईंट और पत्थर फेकते हैं—बदले में वह उन्हें मीठे-मीठे फल देता है।”

उदार व्यक्तियों का धन दूसरों की सेवा सुश्रूषा में ही लगता है। संत कवीर ने कहा भी है—

‘बृच्छ कबहुँ नहि फल भखै नदी न संचै नीर।

परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर॥’

वृक्ष स्वयं फल नहीं खाते। नदियाँ अपना पानी स्वयं नहीं पीतीं। कल-कल करती हुई नदियों का पानी सबके उपयोग के लिए होता है। इसी प्रकार जो सज्जन हैं, जो उदार व्यक्ति हैं, उनके शरीर दूसरों की भलाई के लिए ही होते हैं।

इस संसार में हम देखते हैं कि विजेता आतंक जमाता है, ज्ञानी का हम आदर करते हैं लेकिन उदार मनुष्य ही हमारा स्नेहभाजन होता है।

हमारे देश में अनेक धर्म और सम्प्रदाय के लोग रहते हैं, अनेक भाषा भाषी भी रहते हैं। उदार मन वाले व्यक्ति अनेक धर्मों में सत्य देखते हैं, लेकिन जिनके मन उधार नहीं हैं वे उनमें केवल फर्क देखते हैं।

बहुत से लोग देखते हैं कि वे और अधिक सम्पन्न हो जाएँ तब उदारता बरतें ऐसे व्यक्तियों के सम्बन्ध में प्लुमर ने बहुत अच्छी बात कही है—

“जिसके पास जो है उसी से उदार नहीं है, तो वह यह सोचकर कि ज्यादा मिलने पर उदार बनूँगा, अपने आपको सिर्फ धोखा देता है।”

वास्तव में जो उदार है, वही ज्ञानी है, उसी का जीवन सार्थक है और वह

जो कि दूसरों से प्रेम नहीं करता, ताकतहीन जिन्दगी बसर करता है।

हम यह भी देखते हैं, अनुभव करते हैं कि जो उदार हृदय वाले व्यक्ति होते हैं उन्हीं की मित्रता स्थायी होती है। एक विचारक ने कहा भी है—केवल उदार हृदय वाले ही सच्चे मित्र हो सकते हैं। तंग दिल वाला और कायर मनुष्य सच्ची मित्रता नहीं जानता।

उदार हृदय वाले सज्जनों की मित्रता धीरे-धीरे बढ़ती है और तंग दिल वाले दुष्टों की मैत्री धीरे-धीरे घटती जाती है।

दुष्टों और सज्जनों की मित्रता दोपहर के पहले और दोपहर के बाद वाली परछाई के समान होती है। जैसे—दिन के पहले भाग में सबेरे से दोपहर तक अपनी छाया क्रमशः छोटी होती जाती है, दोपहर तक वह बहुत ही छोटी हो जाती है। ऐसी होती है दुष्टों की मित्रता। कारण यह है कि वे स्वार्थवश मित्रता करते हैं—जब तक स्वार्थ सधता जाता है तब तक उनकी मित्रता रहती है और स्वार्थपूर्ति न होने पर मैत्री टूट जाती है। इसके विपरीत उदार हृदय वाले सज्जनों की मित्रता दोपहर के बाद वाले समय की परछाई के समान क्रमशः बढ़ती जाती है। धीरे-धीरे वह इतनी प्रगाढ़ हो जाती है कि दो मित्र दो शरीर एक मन हो जाते हैं—जैसे कि दोपहर के बाद वाली परछाई शाम होते-होते बहुत बड़ी हो जाती है।

एकता

हितोपदेश की एक कथा है— एक बार कबूतरों का एक झुण्ड चारे की तलाश में उड़ता हुआ एक जंगल के ऊपर पहुँचा। वहाँ उसे जमीन पर चावल के दाने बिखरे हुए दीख पड़े। उन दानों को देखकर कबूतरों के राजा ने सब कबूतरों को सावधान करते हुए कहा कि अवश्य ही दाने किसी बहेलिये द्वारा इस जंगल में बिखेर दिये गये हैं। यहाँ पर उतरना खतरे से खाली नहीं है। अपने नायक की बात सबको अच्छी लगी पर एक कबूतर न माना। उसने जिद पकड़ ली कि दाने चुगने ही हैं। बड़े कबूतर ने कई बार समझाया पर वह न माना। अन्त में सब के सब कबूतर दाने चुगने के लिए वहाँ उतर पड़े। परिणाम सबको मालूम था। सब के सब बहेलिये द्वारा बिछाये गये जाल में फँस गये। अब जिद्दी कबूतर डर के मारे काँपने लगा। सबने अपने नायक से कहा कि इस संकट से बचने का कोई उपाय आप ढूँढ़िये।

बड़े कबूतर ने सबसे कहा 'संकट की घड़ी अवश्य है पर घबड़ाना नहीं अब जो होगा देखा जाएगा, जाल में तो फँस ही गये हैं।' बहेलिये को आता देख बड़े कबूतर ने अपने साथियों से कहा 'सब एक साथ जाल समेत उड़ चलो।' बहेलिये को देखते ही देखते कबूतर जाल लेकर उड़ चले। बहेलिये ने काफी दूर तक उनका पीछा किया अन्त में वह खाली हाथ घर लौटा।

इधर कबूतरों का राजा जाल समेत अपने एक मित्र के यहाँ उतरा। उसका मित्र था एक चूहा। कबूतर ने अपने मित्र को बुलाया। बिल से निकलकर चूहे ने देखा कि बहुत सारे कबूतर जाल में फँसे हैं। चूहे को समझने में देर न लगी। वह अपने मित्र को संकट से मुक्त करने के लिए आगे बढ़ा किन्तु बड़े कबूतर ने कहा पहले हमारे साथियों को जाल काटकर मुक्त करो फिर सबके बाद मुझे मुक्त करना। चूहे मित्र ने जाल काटकर सबको मुक्त कर दिया।

वास्तव में एका में बड़ा बल है। एका ही शक्ति है। अब देखिये न हाथी के लिए तिनके का क्या महत्त्व है पर जब तिनकों को मिलाकर एक रस्ती बना ली जाती है तब उसी से हाथी भी बाँध लिया जाता है। इसीलिए जहाँ एकता रहेगी वहाँ हर प्रकार की उन्नति होगी।

ऋग्वेद का यही उपदेश है—'हे मनुष्यो, तुम लोग सबके हित को ध्यान में रखते हुए एक साथ काम में सग जाओ, एक होकर रहो, मिल-जुलकर काम करो,

परस्पर सद्भाव बनाये रखो। तुम्हारी मंत्रणा में, विचारों में और चिन्तन में एक रूपता हो, विषमता या दुर्भावना नहीं। तुम्हारे अभिप्रायों में, तुम्हारे हृदयों में और तुम्हारे मनों में एकता की भावना रहनी चाहिए जिससे तुम्हारी शक्ति का विकास हो सके।'

कष्ट की महत्ता

महर्षि वाल्मीकि ने कहा है—

‘दुःख में अथवा सुख में मित्र ही सदा मित्र का सहारा होता है।’

कविवर रहीम ने तो अपने एक दोहे में महर्षि के इस कथन को और भी स्पष्ट कर दिया है—

रहिमन निज मन की व्यथा मनही राखो गोय ।

सुनि इठलइहई लोग सब बाँटि न लेइहई कोय ॥

और सच भी यही है। अपने कुछ मित्र ही होते हैं जो दुःख में काम आते हैं, सहारा बनते हैं। सुख में तो सभी आगे-पीछे दौड़ते हैं। आज की दुनिया स्वार्थी है। ऐसी दुनिया के सामने अपना कष्ट सुनाना भी मूर्खता ही है।

बापू ने कहा है “सच्चा कष्ट यदि सच्चाई के साथ सहन किया जाय तो वह पत्थर जैसे हृदय को भी पानी-पानी कर डालता है।”

मनुष्य के जीवन में परीक्षा की अनेक घड़ियाँ आती हैं, कष्ट के अनेक क्षण आते हैं लेकिन बुद्धिमान् मनुष्य उनसे घबड़ाते नहीं। जिनमें जीवत होता है वे कष्टों की परवाह भी नहीं करते और ठीक भी है—क्योंकि कष्ट में घबड़ाने से कोई काम नहीं बनता। कष्ट से छुटकारा पाने का उपाय सोचना चाहिये।

हजरत मुहम्मद ने तो कष्ट को प्राणों का प्रायश्चित्त बताया है। हजरत मुहम्मद को तीव्र ज्वर में बेचैन देखकर उनकी पत्नी रोने लगी। मुहम्मद साहब ने कड़ककर कहा “खामोश ! जिसे अल्लाह पर भरोसा है वह कभी इस तरह नहीं रो सकता। हमारे कष्ट हमारे पापों का प्रायश्चित्त हैं। निःसन्देह अल्लाह के किसी विश्वासी को एक काँटा भी चुभता है तो अल्लाह उसका स्तवा बढ़ा देता है और उसका एक पाप धुल जाता है। जिसका जितना विश्वास होता है उसे उतने ही कष्ट भी दिये जाते हैं। यदि विश्वास कमजोर है तो कष्ट भी बैसे ही होते हैं। किन्तु किसी दशा में भी कष्टों में उस समय तक कोई माफी न होगी जब तक कि मनुष्य का एक एक पाप धुल न जाय और वह पाप रहित होकर गुण से रहने लगे।

स्वयं कष्ट सहन करते हुए भी अपने स्वभाव को इस प्रकार परिवर्तित कर लेना कि दूसरों को कष्ट न हो एक बहुत बड़ी बात है।

हम एक समय में अनेक कष्टों से घिरे रहते हैं इस सम्बन्ध में एक विचारक की उक्ति हमें बल प्रदान करती है—

‘एक समय में एक कष्ट से अधिक कभी मत सहन करो ।’ कुछ लोग हैं जो तीन तरह के कष्ट एक साथ सहन करते हैं—

वे तमाम जो आज तक उन पर पड़े, वे तमाम जो आज तक उन पर पड़ रहे हैं और वे तमाम जिनके पड़ने की वे आस लगाये बैठे हैं । और वे लोग तो सदा कष्ट में रहते हैं जो ईर्ष्या करते हैं, जो घृणा करते हैं, जो सदा वहम में डूबे रहते हैं और जो सदा दूसरों के भरोसे पर जीते हैं ।

आखिर कष्ट से छुटकारा कैसे पाया जाय ?

कष्ट से मुक्ति पाने का एक उपाय यह है कि हम अपनी वासनाओं को छोड़ दें ।

तिरुवल्लुवर के शब्दों में—

ज्यों-ज्यों काम, क्रोध, और मोह छूटते जाते हैं, त्यों-त्यों उन्हीं के साथ दुःख भी धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं ।

काम

एक कहावत है 'शरीर के लिए काम दूड़ लो, मन को खुशी अपने आप मिल जायेगी। कहावत यों ही नहीं कह दी जाती वह वर्षों की साधना, वर्षों के अनुभव पर आधारित होती है। वास्तव में जो व्यक्ति खाली बैठा रहता है उसका दिमाग शैतानी ही करता है।

इस संसार में समस्त प्राणी, चर-अचर किसी न किसी रूप में अपना काम करते हैं। फिर मनुष्य जिसके पास विवेक है वह क्यों न काम करे।

आज की दिखावटी दुनिया में प्रायः लोग काम करना कम पसन्द करते हैं। अपना काम करने से कतराते हैं। वे सोचते हैं कि लोग देख लेंगे तो क्या कहेंगे? और इसीलिए हमारा देश छोटे-छोटे देशों से भी पिछड़ा हुआ है। हम जब अपना काम नहीं करेंगे तो समाज और देश के विकास में हमारा क्या योगदान रहेगा? अगर हम काम नहीं करते तो क्या हमें देश की सम्पत्ति का उपभोग करना चाहिए? प्रश्न बहुत ही समीचीन है और इसका समीचीन उत्तर भी बाइबिल में मिल जायेगा—

“अगर कोई व्यक्ति काम नहीं करता तो उसे खाना भी नहीं चाहिए।”

कुछ लोग काम छोटा होने से शर्मते हैं। वे क्या करते हैं उसे बताते तक नहीं। पर कोई काम छोटा बड़ा नहीं होता। सब कामों की महत्ता है—उनकी अहमियत है।

एमसन ने ठीक ही कहा है—

‘इन्सान की सिरमौर-खुशकिस्मती यह है कि वह किसी काम के लिए पैदा हुआ, जिसमें वह लगा और आनन्द पाता रह सके, चाहे वह काम टोकरी बनाना हो, गहरें खोदना हो, मूर्तियाँ बनाना हो या गीत लिखना।’

हमें काम करने में ही खुशी और शान पाना चाहिए, और मेहनत, अन्य हर अच्छी चीज की तरह स्वयं अपना इनाम है।

स्वामी रामतीर्थ ने काम को सार्वभौम बनाने पर विशेष बल देते हुए कहा है—

‘तुम कहीं हो, दाता की स्थिति में रहो याचक की स्थिति में नहीं, ताकि तुम्हारा काम सबके लिए हो सके, व्यक्तिगत जरा भी नहीं।

लेकिन सदा दाता की स्थिति कैसे बनी रह सकती है? वह स्थिति अपने

काम से ही उठ सकती है इतना ही नहीं काम में लगा रहने वाला व्यक्ति सदा प्रसन्न ही रहता है, उदासी शायद ही कभी उसके पास फटकती हो क्योंकि कर्मशीलता और गमगीनी साथ-साथ नहीं रहती ।

काम तो दुनियां में बहुत से हैं पर कौन सा काम अच्छा है कौन बुरा है—इसको भी ध्यान में रखना आवश्यक है ।

बुरे काम से हम बुरे बनेंगे और अच्छे काम से अच्छे । बुरे काम से तात्पर्य है—चोरी करना, चोर बाजारी करना, गिरहकटी करना, रिश्वत लेना इत्यादि । हमें चाहिए कि हम ऐसे कामों से अपने को बचाएँ ।

प्लटार्क ने बहुत अच्छी बात बतायी है—

‘बुरा काम करना नीचता है । बिना खतरा मोल लिए अच्छा काम करना मामूली बात है । मगर महान और शरीफ काम करना सज्जन का ही काम है । भले ही उनके करने में उसे सब कुछ खतरे में डाल देना पड़े । और हूँ अपने काम में सफलता तभी मिलेगी जब हम अपने काम को चाँद, तारों और सूरज के काम की तरह निःस्वार्थ बना देंगे ।’

‘हमारे देश के ऋषियों मनीषियों ने मनुष्य की औषत आयु 100 वर्ष मानी थी । उन्होंने सतत काम करते हुए 100 वर्ष जीने की कामना की है । और वह काम कर्तव्य की भावना से, समाज और देश की यहाँ तक कि विश्व के कल्याण की भावना से किया जाय ।’

गुण

‘गुणियों का सम्मान गुणों के कारण ही होता है, स्त्री-पुरुष के भेद या उम्र के कारण नहीं।’ महाकवि भवभूति का यह कथन उनके अनुभव पर आधारित है जो सत्य है।

कौवे की चोंच को सोने से मढ़िये, उसके पैरों को मणियों से जड़िये, उसके हर एक पंख में मोती पिरोइये, तो भी वह कौआ ही रहेगा, राजहंस नहीं हो जायेगा।

साधारण गुणों से भी हम असाधारण बन सकते हैं। सन्त महात्माओं का कहना है कि बच्चे से भी गुण ले लो। एक विचारक ने ठीक ही कहा है—

‘कोई व्यक्ति अपने गुणों से ही बड़ा बनता है, ऊँचे आसन पर बैठने से नहीं। महल के शिखर पर बैठने से कौआ गरुड़ हो जाता है क्या?’

गुण ग्रहण करने में अपना-पराया, मित्र और शत्रु का ध्यान नहीं रखना चाहिए। यदि शत्रु गुणी है तो उससे गुण ग्रहण करने में लज्जा का अनुभव नहीं करना चाहिए। चैस्टर फ्रील्ड कहते हैं कि जिसे तुम दूसरों में देखकर प्रसन्न होते हो, वह तुममें हो तो उससे दूसरों को प्रसन्न करो।

कोई अज्ञात आन्तरिक कारण या गुण पदार्थों को सम्बद्ध कर देता है। प्रीतियाँ बाह्य कारणों पर आश्रित नहीं होती। सूर्य के उदय होने पर कमल खिल जाता है और चन्द्रमा के निकलने पर चन्द्रकान्त मणि पसीजने लगती है।

गुणी की पहचान गुणी ही करता है। एक बार एक विद्वान और गुणग्राही राजा घोड़े पर सवार होकर लोगों के सुख-दुःख की जानकारी के लिए निकल पड़ा। जाड़े के दिन थे। राजा को एक ऐसा आदमी मिला जिसके शरीर पर गर्म कपड़े नहीं थे, यहाँ तक कि वदन ठकने के लिए पूरे सूती कपड़े भी उसके पास नहीं थे। राजा ने उस व्यक्ति से पूछा—

‘अपि शीतं न बाधति?’

‘क्या आपको ठण्ड नहीं लग रही है?’

वह व्यक्ति बहुत बड़ा विद्वान् था। कहते हैं कि विद्या और भौतिक रूप से धनवान् होना, दोनों का एक साथ रहना कम ही होता है। उस व्यक्ति ने तुरन्त राजा को उत्तर दिया।

“न शीतं बाधते राजन् ! यथा बाधति बाधते।”

“हे राजन् ! मुझे ठण्ड से इतनी पीड़ा नहीं हो रही है जितनी कि आप का

‘बाधति’ शब्द पीड़ित कर रहा है।

राजा को ‘बाधति’ के स्थान पर ‘बाधते’ का प्रयोग करना चाहिये था। ‘बाधति’ अशुद्ध है।

राजा को यह समझने में देर नहीं लगी कि वह व्यक्ति साधारण व्यक्ति नहीं था एक गुणी और विद्वान् व्यक्ति था। राजा घोड़े से तुरन्त उतरा। ससम्मान अपने साथ लिवा गया और उस गुणी व्यक्ति का आदर सत्कार किया।

जैसे किसी ऊँचे स्थान पर शिला बड़े परिश्रम से चढ़ाई जाती है और नीचे क्षण भर में गिरा दी जाती है, उसी प्रकार गुण और दोष के विषय में आत्मा की स्थिति है।

मनुष्य अपने ही गुणों से नीचे चला जाता है और अपने ही गुणों से ऊपर चढ़ जाता है।

गुणी होना मनुष्य के अपने हाथ में है। ऐसी अवस्था में मनुष्य का गुणहीन होना निन्दनीय है।

पं० विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी का विचार है—

“अपने अन्दर केवल एक ही ऐसे गुण का विकास कर लो कि दुनिया में तुम्हारी ध्वज कीर्ति फैल जाय।”

मनुष्यों में यदि गुण होते हैं तो उनका प्रकाश स्वयं हो जाता है। कस्तूरी की सुगन्ध को शपथ से सिद्ध नहीं किया जाता है।

एक विचारक ने ठीक ही कहा है—

“लोग प्राणियों के गुणों का सम्मान करते हैं, केवल जाति का नहीं। टूटा हुआ स्फटिक का बर्तन कौड़ी के दाम भी नहीं लिया जाता।

किसी की कोई विशेषता होती है, उसी से उसकी ख्याति संसार में फैल जाती है। कोई भी सर्वज्ञ अथवा सर्वगुण सम्पन्न नहीं होता। क्या केवड़े पर फल लगता है? क्या कटहल पर फूल आते हैं? क्या पान की बेल पर फूल और फल लगते हैं?

त्याग

जीवन में त्याग का बहुत महत्त्व है। ध्यान से देखने पर हमें यह ज्ञात होगा कि प्रकृति त्यागमयी है। इस संसार में स्रष्टा ने जो कुछ भी बनाया है उसकी उपयोगिता दूसरों के लिए ही है। प्रकृति हमें आदेश देती है कि जो मनुष्य अपने हिस्से में से रत्तीभर अपने पड़ोसियों को नहीं देता वह काले कोयले जैसा काला हो जाएगा।

ऋग्वेद का कथन है कि जो व्यक्ति स्वयं अपना ही पेट भरता है, दूसरे को कुछ देता नहीं है वह पाप खाता है।

स्वामी रामतीर्थ का कहना है—

‘श्वेत वस्तुओं के सद्गुण को ग्रहण करो और तुम सफल हुए बिना नहीं रह सकते। श्वेत से तात्पर्य क्या? श्वेत वस्तुओं में स्वच्छ दर्पण, स्वच्छ मोती, सफेद फाख्ता, स्वच्छ हिम, संक्षेप में पवित्रता और सच्चाई सूचक सभी सुन्दर चिह्न इस विषय में तुम्हारे पथप्रदर्शक बन सकते हैं। उनके मार्ग का अनुसरण करो और निःसंदेह आत्मत्याग की भावना सीख लो। जो कुछ दूसरों से लिया हो उसे दूसरों को ही दे डालो; स्वार्थमय संचय के पथ से हट जाओ और अपने आप स्वच्छ बन जाओगे। बीज यदि चाहता है कि एक सुन्दर कलिका रूप में खिले, तो पहले उसे अपने आपको खाद में गला देना होगा। पूर्ण आत्म वलिदान अन्त में फल लाता है, उसका फल लाना अनिवार्य है।’

त्याग और योग का बहुत गहरा सम्बन्ध है। आसक्ति से यदि बाहरी वस्तुओं का त्याग किया भी तो वह त्याग नहीं तो ‘भोग’ की श्रेणी में जाएगा।

यदि त्याग में अभिमान की गन्ध मिली हुई है तो वह भी त्याग नहीं। सच्चा त्याग क्या है? आचार्य विनोबा भावे के शब्दों में—

‘जिस त्याग से अभिमान उत्पन्न होता है वह त्याग नहीं है। त्याग से शान्ति मिलनी चाहिए। अभिमान का त्याग ही सच्चा त्याग है। इच्छाओं का त्याग करना आसान काम नहीं है। इच्छाओं का त्याग वही मनुष्य कर सकता है जो हर हालत में अपने को और तमाम वस्तु स्थितियों को ईश्वर में ही देखता है, वही इच्छाओं का त्याग कर सकता है।

त्याग से ही अमृत की प्राप्ति होती है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—‘धन से नहीं और सन्तान से भी नहीं, अमृत स्थिति की प्राप्ति केवल त्याग से ही होती है।’

तिस्रवल्चुवर के विचार से—

‘त्याग से अनेक प्रकार के सुख उत्पन्न होते हैं, इसलिए अगर तुम उन्हें अधिक ज़रूरत तक भोगना चाहो तो शीघ्र त्याग करो।’

त्याग से शान्ति मिलती है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥

“अर्जुन! जिस समय यह पुरुष मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग कर देता है, उस समय आत्मा से ही आत्मा में सन्तुष्ट हुआ स्थिर बुद्धि वाला कहा जाता है।”

—————

दया

यह मनुष्य जीवन बड़े भाग्य से मिलता है। अपने को अच्छा या बुरा बनाना हमारे ही हाथ में है। कुछ गुण होते हैं जिनके कारण हम अच्छे बनते हैं और कुछ दुर्गुण ऐसे होते हैं जिनके कारण हम बुरे बन जाते हैं। दया एक ऐसा ईश्वरीय गुण है जो मनुष्य को बहुत ऊँचे उठा देता है। आज की सभ्यता में तो हम किसी भी बात की परवाह नहीं करते। रास्ते में कोई असहाय व्यक्ति गिरकर कराह रहा है तो कराहे-हम क्या करें? ऐसा हममें से बहुतों का विचार है। पर क्या यह विचार श्रेयस्कर है, क्या इसमें लोक कल्याण की भावना निहित है, कदापि नहीं।

दया वह भाषा है जिसे बहरे सुन सकते हैं और गूंगे समझ सकते हैं। दया के शब्द संसार के संगीत हैं। जिसके दिल में दया नहीं उसका दिल पत्थर का होता है। जिसका चित्त सब जीवों पर दया से पिघल जाता है उसे ज्ञान और मोक्ष की क्या आवश्यकता क्योंकि दयाशील अन्तःकरण प्रत्यक्ष स्वर्ग ही है। दया दौलत है। तिरु-वल्लुवर के शब्दों में—

“दया से लवालब भरा हुआ दिल ही सबसे बड़ी दौलत है क्योंकि दुनिया की दौलत तो बुरे आदमियों के पास भी देखी जाती है। जो दूसरे व्यक्ति के दुःख में दया दिखाता है वह स्वयं दुःख से मुक्त हो जाता है और जो दूसरे के दुःख की अवहेलना करता है या उस पर प्रसन्न होता है, वह कभी न कभी उसमें स्वयं जा पड़ता है। संत कबीर ने तो कहा ही है—

जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लाभ तहँ पाप।

जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप ॥

मनुष्य योनि पाकर यदि हम दया से वंचित हैं तो हमारे जीवन की उपयोगिता ही क्या है? वैसे तो पशु-पक्षी भी खाते-पीते और सोते हैं। तो क्या हम उनकी ही श्रेणी में हैं? यदि नहीं तो हम सबको नंगों और भूखों, असहायों पर दया करनी चाहिए यह हमारा कर्तव्य है। बाइबिल के अनुसार—दयावान वह है जो पशुओं के प्रति भी दयावान है।

महात्मागांधी ने दया को धर्म का प्राण बताया है। उनका विचार है—दया धर्म से हीन धर्म पाखण्ड है। दया ही धर्म का मूल है और उसका त्याग करने वाला ईश्वर का त्याग करता है। रंक का त्याग करने वाला सबका त्याग करता है।

प्रेम और दया से मनुष्य इस संसार में बड़े से बड़े काम कर सकता है—शेख शादी कहते हैं—भारी तलवार कोमल रेशम को नहीं काट सकती, दयालुता और मीठे शब्दों से हाथी जहाँ चाहो ले जाओ।

हजरत मुहम्मद ने ठीक ही कहा है—

जो खुदा के बन्दों के प्रति दयालु है, खुदा उसके प्रति दयालु है।

दरिद्रता

इस संसार में विशेषकर आज के युग में निर्धन या दरिद्र होना अभिशाप है। गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में 'नहिं दरिद्र सम पातक पुंजा, एक डच कहावत है दरिद्रता आलस्य का पुरस्कार है, वास्तव में दरिद्रता बहुत बड़ा दुःख है। दरिद्रता किसी भी व्यक्ति के सौन्दर्य को ढक लेती है। पुत्रहीन के लिए घर सूना होता है, जिसका कोई सच्चा मित्र नहीं है उसका समय सूना होता है, अज्ञानी व्यक्ति के लिए दिशाएँ सूनी होती हैं और दरिद्र के लिए सब कुछ सूना होता है।

दरिद्रता एक बड़ा दुःख तो है ही। दरिद्रता यदि सुख के बाद आती है तो भयानक क्लेश देती है क्योंकि घोर अन्धकार में दीप-दर्शन की भाँति, दुःखों का अनुभव करके ही सुख अच्छा लगता है। जो मनुष्य सुख भोगने के पश्चात् दरिद्र हो जाता है उसकी दशा बहुत ही दयनीय होती है। वह केवल शरीर धारण किये रहता है।

दरिद्रता अनेक दुःखों की जननी है।

दुनिया में ऐसे भी महापुरुष हुए हैं जिन्होंने दरिद्रों की सहायता की, अबलों, असहायों की सेवा की, उन्हें प्रेरणा प्रदान की जिससे वे सुख की जिन्दगी जीने लायक हो गए। उन महापुरुषों में महात्मा गांधी भी थे। उन्होंने तो दरिद्रनारायण की सेवा में अपना तन-मन-धन सब कुछ समर्पित कर दिया। उन्हें दरिद्रनारायण की सेवा में ही आनन्द मिलता था। बापू ने कहा है—

“मैं तो यह जानता हूँ कि परमात्मा उच्च समाज और बड़े-बड़े लोगों की अपेक्षा अधिकांशतः उस सृष्टि में मिलता है जिसे हम सबसे हीन समझते हैं। मैं उन्हीं के स्तर पर पहुँचने की साधना कर रहा हूँ। उनकी सेवा बिना मैं वहाँ तक नहीं पहुँच सकता; यही कारण है कि मैं दलितों का सेवक हूँ।”

दाता

अफलातून के अनुसार चार तरह के लोग होते हैं—पहली श्रेणी में आते हैं मक्खीचूस। मक्खीचूस न तो स्वयं खाता है और न दूसरों को देता ही है।

दूसरे प्रकार के लोग हैं कंजूस—कंजूस स्वयं तो खाता है किन्तु दूसरों को नहीं देता है।

तीसरे प्रकार के लोग 'उदार' कहे जाते हैं उदार व्यक्ति आप भी खाता है और दूसरों को भी खिलाता है, देता है। चौथी श्रेणी में आता है दाता। दाता स्वयं नहीं खाता लेकिन दूसरे को देता है। सब लोग यदि दाता नहीं बन सकते तो उदार तो अवश्य बन सकते हैं।

सौ में एक शूरवीर, हजार में एक विद्वान्—दस हजार में एक वक्ता होता है परन्तु दाता लाख में कोई हो या न हो कुछ निश्चित नहीं।

गुरुदेव रबीन्द्रनाथ ठाकुर ने अच्छे दाता के विषय में एक बहुत बढ़िया बात बतायी है—

“लकड़हारे की कुल्हाड़ी ने पेड़ से अपने लिए बेंट मागा। पेड़ ने दे दिया।”

अनेक महापुरुषों का यह विचार है कि अपनी सम्पत्ति देखकर ही दान देना चाहिए और ऐसी दान शीलता शोभा देती है।

हमारे देश में अनेक ऐसे दाता, हो चुके हैं जिन्होंने अपनी दानशक्ति से यश प्राप्त किया है। महादानी कर्ण भी उन्हीं महापुरुषों में एक हैं।

एक समय की बात है। पानी बरस रहा था। सभी पेड़ पौधे भीग रहे थे। संयोग से उसी समय अर्जुन श्रीकृष्ण के पास गये। बात ही बात में अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा 'आप तो सदा कर्ण की ही प्रशंसा करते हैं। आप उसकी दानशीलता का गुण-गान करते अघाते नहीं आप उसकी वीरता का बखान करने थकते नहीं। हम लोगों की प्रशंसा आप कभी करते ही नहीं।'।

श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा 'अर्जुन ! सच्चाई पर पर्दा नहीं डालना चाहिए इस समय कर्ण के समान कोई दानी नहीं है। यदि तुम्हें मेरी बात झूठी लग रही है तो चलो परीक्षा कर ली जाय।' अर्जुन तैयार हो गये।

श्रीकृष्ण अर्जुन के साथ वेश बदलकर पहले युधिष्ठिर के पास गए। उनसे पाँच मन सूखी लकड़ियों की मांग की। युधिष्ठिर ने कहा 'इस समय आप देख ही

रहे हैं कि पानी बरस रहा है। सारा वन गीला पड़ा है। पानी निकल जाने दीजिये, थोड़ी देर प्रतीक्षा करें। आपको पांच मन नहीं और अधिक लकड़ियां मिल जाएंगी। अब इस समय सूखी लकड़ियां कहां से दूँ आपको।'

वेश बदले हुए श्रीकृष्ण बोले 'हमारे पास इतना समय नहीं है कि हम प्रतीक्षा कर सकें।'

वहां से उसी रूप में श्रीकृष्ण अर्जुन को लिवाकर कर्ण के पास पहुँचे। कर्ण से भी पांच मन लकड़ियों के लिए प्रार्थना की उन्होंने। मूसलाधार पानी बरस रहा था। कर्ण सोचने लगे कि आज तो याचक खाली हाथ ही जायेंगे क्या? थोड़ी देर मौन छाया रहा।

श्रीकृष्ण ने कहा 'अच्छा हम लोग जा रहे हैं। आप कर ही क्या सकते हैं। पानी भी तो बरस रहा है। इस समय आप लकड़ियाँ कहीं से दे सकते हैं? यह बात कर्ण को बाण के समान लग रही थी।

कर्ण ने श्रीकृष्ण को बुलाया 'आइए मैं आप को पांच मन लकड़ी अभी देता हूँ' इतना कहकर उन्होंने अपने धनुष पर बाण चढ़ा लिया। देखते-देखते महल के चन्दन के दरवाजे फाड़-फाड़ कर नीचे गिरा दिए। अर्जुन आँख फाड़-फाड़ कर देखते रहे। वाद में श्रीकृष्ण ने कर्ण की दान शीलता की प्रशंसा की। अर्जुन मन ही मन कर्ण की सराहना करने लगे।

दुःख

हमारे जीवन में सुख और दुःख रथ के पहिये की तरह ऊपर और नीचे आते जाते रहते हैं। कोई व्यक्ति आज दुःखी है तो कल सुखी भी होगा। महाकवि कालिदास ने कहा है—ऐसा कौन सा व्यक्ति है जिसे जीवन में केवल दुःख ही दुःख मिला हो और वह व्यक्ति मुझे नहीं दिखाई देता जिसने अपने जीवन में केवल सुख ही सुख भोगा हो। एक विचारक ने यहाँ तक कहा है 'जिसने अपने जीवन में कभी दुःख नहीं सहा वह सबसे बड़ा दुखिया है और जिसने कभी पीर नहीं सही वह सबसे बड़ा बेपीर है। दुःखों की प्राप्ति के कारण हम स्वयं होते हैं यह बात बताई है स्वामी विवेकानन्द ने। उनका कहना है—

“जिस वक्त हमको दुःख की प्राप्ति होती है, उस वक्त किसी और को दोष देने का कारण नहीं। अपना ही दोष ढूँढ़ निकालना समझदारी का काम है। 'दुःख एक प्रकार का छूत का रोग है। अपना मुँह लटकाये हुए हम अगर किसी से मिलते हैं तो उसका भी उल्लास कम हो जाता है। हम उसे भी दुःखी कर देते हैं।”

इस दुःख का कारण क्या है ? श्री टाल्स्टाय के शब्दों में—

“लोग नाना प्रकार के दुःख इसलिए भोग रहे हैं कि उनमें से अधिकांश लोग कर्तव्यहीन जीवन बिता रहे हैं। जो काम उन्हें करना चाहिए वह काम वे नहीं कर रहे हैं।”

गीता में श्रीकृष्ण ने बताया है कि दुःख का कारण हमारी चित्तवृत्तियों का प्रभाव ही है।

मनु ने कहा है—‘जो बाहरी चीजों के वश में है वह सब दुःख है और जो अपने अधिकार में है वह सुख है।’

दुःख को न तो नातेदार बँटाते हैं न रिश्तेदार, न मित्र, न पुत्र। मनुष्य उसे अकेला ही भोगता है क्योंकि कर्म तो करने वाले के ही पीछे लगते हैं।

कविवर रहीम ने विपत्ति को, दुःख को मित्र और अमित्र की बहुत बड़ी कसौटी बतायी है।

रहिमन विपदा हू भली जो थोरे दिन होय।

हित अनहित या जगत में जानि परत सब कोय ॥

दुःख हो, कोई विपत्ति हो, इसमें घबड़ाने से काम नहीं बनता। जो महापुरुष होते हैं, कर्मठ व्यक्ति होते हैं वे सुख और दुःख को बराबर का दर्जा देते हैं। वे न तो

सुख में बहुत प्रसन्न होते हैं और न दुःख में दुःखी। जो व्यक्ति अपने जीवन में कुछ करना चाहता है वह छोटे-मोटे दुःख से घबड़ाता नहीं और घबड़ाने से काम भी तो नहीं बनता।

जो विवेकशील व्यक्ति होते हैं वे विपत्ति में धैर्य से काम लेते हैं, घबड़ाते नहीं। उन्नति के समय, सामर्थ्य के समय उनमें क्षमा का गुण विशेष रूप से रहता है, सभा में बोलने की चतुराई होती है। वे किसी से लड़ते नहीं। यदि कभी युद्ध की भी स्थिति आ गयी तो वे अपना पराक्रम दिखाते हैं और प्रायः विजयी होते हैं।

जिस सुख के अन्त में दुःख है, वह वास्तव में सुख नहीं दुःख ही है और जिस दुःख के अन्त में सुख है, वह दुःख नहीं सुख है। जब हम अपने जीवन के उद्देश्य को मात्र खाने-पीने-सोने-पहनने-ओढ़ने में ही सीमित कर लेंगे तो हम सांसारिक दृष्टि से सुखी हो सकते हैं और यदि हमारी व्यापक दृष्टि होती है तो दुःख के कारण उसके निवारण, हम संसार में क्यों आये हैं? हमें क्या करना है? क्या हम अपना काम कर रहे हैं? ये सब बातें सोचेंगे तो हम दुःखी ही रहेंगे—

संत कबीर अपना उद्गार इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—

सुखिया सब संसार है खावै अरु सोवै।

दुखिया दास कबीर है जागे अरु रोवै ॥

दोष

‘दोष पराये देखकर चला हसन्त हसन्त ।

अपने चित्त न आवई जिनको आदि न अन्त ॥’

सन्त कबीर का यह कथन बहुत ही स्पष्ट है। वास्तव में हम दूसरे के दोष ढूँढ़ने में बड़े आनन्द का अनुभव करते हैं। दूसरे में यदि एक बुराई है तो हमें अनेक बुराइयाँ दिखाई पड़ेंगी। लेकिन यदि हम अपने अन्दर देखें तो हममें अनेक दोष हैं, इतने दोष हैं कि उनका न आदि है और न अन्त। हमें दूसरों के दोष तो देखने ही नहीं चाहिए और यदि दूसरे के दोष देखने हैं तो पहले अपने देख लें। यह है संत कबीर की वाणी का तात्पर्य।

हमें यदि अपने को अच्छा बनाना है, यश और प्रतिष्ठा पानी है तो अपने दोष देखकर उन्हें दूर करना बहुत आवश्यक है। एक बार श्रीरामकृष्ण परमहंस के पास एक बुढ़िया अपने बच्चे को लेकर गयी। ‘माँ ! तू मेरे पास क्यों आई है ?’—परमहंस ने बड़े ही मीठे स्वर में उस बुढ़िया से पूछा।

‘बेटा ! यह बच्चा गुड़ बहुत खाता है। इसकी गन्दी आदत छुड़ाने के लिए तुम्हारे पास आई हूँ। तुमसे बड़ी उम्मीद है बेटा।’ बुढ़िया टकटकी लगाये श्रीरामकृष्ण परमहंस को देखती रही।

‘माँ ! इस बच्चे को पन्द्रह दिन बाद मेरे पास ले आना।’ श्री रामकृष्ण परमहंस थोड़ी देर मौन रहने के बाद बोले। बुढ़िया घर चली गयी और पन्द्रह दिन बाद बच्चे को लेकर श्रीरामकृष्ण परमहंस के पास पहुँची। देखते ही वे बुढ़िया और उस बच्चे को पहचान गये। श्रीरामकृष्ण परमहंस ने बच्चे से कहा “देखो बेटे ! अधिक गुड़ खाने से बहुत नुकसान होता है। अब गुड़ मत खाया करो।”

बुढ़िया ने परमहंस से कहा “बेटा ! यह बात तो तुम पन्द्रह दिन पहले भी कह सकते थे। उस समय तुमने यह बात क्यों नहीं कही ?” “माँ ! उस समय तो मैं भी गुड़ खाता था। अपनी आदत सुधारने से पहले मैं दूसरे की आदत कैसे ठीक कर सकता हूँ। मैंने पहले अपनी आदत सुधारी, अब इस बच्चे की भी गुड़ खाने की आदत छूट जाएगी।”

श्री रामकृष्ण परमहंस ने अनुभव किया कि बिना गुण के गुण की बात करना बकवास है।

बहुत से व्यक्ति उन लोगों से नाराज हो जाते हैं जो उनके दोष बताते हैं,

जबकि उन्हें नाराज होना चाहिए उन दोषों से जो कि उन्हें बताये जाते हैं ।

अपना दोष हमें तभी दिखाई देगा जब हम अपने को छोटा समझेंगे । जब तक हम अपने अहं को छोड़कर विवेक का सहारा नहीं लेंगे तब तक अपने दोष दिखाई ही नहीं पड़ेंगे ।

अबु उस्मान ने ठीक ही कहा है—

“अपना दोष कोई नहीं देख पाता । अपना व्यवहार सभी को अच्छा लगता है । लेकिन जो हर हालत में अपने को छोटा समझता है वह अपना दोष भी देख सकता है ।

हितोपदेश में बताया गया है कि अपना भला चाहने वाले को छह दोष छोड़ देने चाहिए—अधिक सोना, अंगड़ाइयां लेना, भय, क्रोध, आलस्य और देर से काम करने की आदत । दोषों को ठीक करना बहुत कठिन है । एक विचारक के शब्दों में—“हज़ार गुणों को इकट्ठा कर लेना आसान है, पर एक दोष दुरुस्त कर लेना मुश्किल ।”

कन्फ्यूशियस का कथन बहुत ही प्रभावपूर्ण है—

‘अपने पड़ोसी की छत पर पड़े हुए बर्फ की शिकायत न करो, जब कि तुम्हारे खुद के दरवाजे की सीढ़ी गन्दी है ।’

नम्रता

‘दुनिया के विरुद्ध खड़े रहने की शक्ति प्राप्त करने के लिए घमण्डी या छोटा बनने की आवश्यकता नहीं है। ईसा दुनिया के खिलाफ खड़े रहे। बुद्ध भी अपने जमाने के खिलाफ गये। ब्रह्मा ने भी वैसा ही काम किया। वे सब नम्रता के पुतले थे। अकेले खड़े रहने की शक्ति नम्रता बिना असम्भव है।’

महात्मा गाँधी के इस कथन पर यदि हम ध्यान दें तो हमें मालूम होगा कि दुनिया में जितनी भी झुकने वाली, लचकदार वस्तुएँ हैं वे अधिक स्थायी होती हैं। भयंकर आँधी में वही वृक्ष गिरते हैं जिनमें लोच नहीं रहता। नम्रता महानता का लक्षण है।

आचार्य विनोबा भावे के शब्दों में—

‘नम्रता माने लचीलापन, लचीलेपन में तनने की भी शक्ति है, जीतने की कला है और शौर्य की पराकाष्ठा है।’

ऐसा देखा गया है—जो जितना ही उदार और परोपकारी है, जो अपने अच्छे अच्छे कार्यों से सबको प्रसन्न रखता है, जो ईमानदार और कार्यकुशल है—वह विनम्र भी होता है।

इस संसार में जितनी भी वस्तुएँ ईश्वर ने बनायी हैं सब एक दूसरे की भलाई के लिए ही हैं। वृक्षों में जब फल आ जाते हैं तब वे झुक जाते हैं। अन्य ऋतुओं के बादल बहुत ऊँचाई पर चलते हैं लेकिन वर्षा के समय वे झुक जाते हैं, बहुत समीप आ जाते हैं। व्यक्ति के पास जब सम्पत्ति आ जाती है, जब वह अपने परिश्रम की कमाई से ऐश्वर्यवान बनता है तब वह विनम्र हो जाता है। लेकिन इसमें कोई विशेषता नहीं है क्योंकि यह तो परोपकारियों का स्वभाव ही है।

एक बार ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से मिलने के लिए एक सज्जन रेलवे स्टेशन पर उतरे। वे आधुनिक वेशभूषा में सजे संवरे थे। संयोग से वहाँ साधारण वेश-भूषा वाले ईश्वर चन्द्र विद्या सागर उपस्थित थे। मिलने वाले सज्जन उन्हें पहचानते न थे। उन्हें एक ऐसे कुली की तलाश थी जिसे विद्यासागर का घर मालूम हो। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर सब सुन रहे थे। अपने मेहमान को परेशान देखकर वे उनके पास गए बोले ‘आप चिन्तित क्यों हैं?’ वे सज्जन बोले ‘हमें एक ऐसे कुली की तलाश है जो ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का घर जानता हो।’

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने तपाक् से उत्तर दिया “जी मैं जानता हूँ”— इतना कहकर अपने अतिथि की अटैची सर पर रखकर आगे-आगे चलने लगे ईश्वर चन्द्र

विद्यासागर। उन्होंने उस बीच अपनी बातों से अपने अतिथि को यह एहसास न होने दिया कि वे ही ईश्वरचन्द्र विद्यासागर हैं।

जब ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का घर आ गया तब अतिथि महोदय ने कहा अब आप उन्हें बता दें कि अमुक साहब आप से बहुत दूर से मिलने आए हैं 'बहुत अच्छा' कहकर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर घर के अन्दर चले गये। थोड़ी देर बाद वे पुनः उस आगन्तुक के पास आकर उपस्थित हुए। वे सज्जन बोले "मुझे कृपया ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से शीघ्र मिलवा दीजिए।"

ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने बड़े विनम्र स्वर में कहा, "मैं ही हूँ।"

इतना सुनकर अतिथि महोदय पानी-पानी हो गये। वह शर्म से गड़े जा रहे थे। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने उनसे कहा 'महोदय, इसमें शर्म की क्या बात, मेरा तो काम ही है कि दूसरों की सहायता करूं। मैंने देखा कि आप की अटैची भारी है तो मैंने उसे यहाँ तक पहुँचा दिया। इससे मैं छोटा थोड़े ही हो गया'—ठीक ही कहा है गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने —

'हम महानता के बहुत समीप होते हैं, जब हम नम्रता में महान् होते हैं।'

परिश्रम

‘यश की प्राप्ति के लिए, सुख की इच्छा से अथवा साधारण मनुष्यों से आगे बढ़ने के लिए, धैर्य पूर्वक, प्रयत्न करने वालों के पास, परिश्रम करने वालों के पास उत्सुकता के साथ सफलता स्वयं उपस्थित हो जाती है।’ ‘किरातार्जुनीय’ महाकव्य का यह कथन अक्षरशः सत्य है और अच्छे काम में किया गया परिश्रम अवश्य ही सफल होता है।

संसार का सारा कार्य-व्यापार परिश्रम पर ही आधारित है। एक कन्नड कहावत है—‘कुएं में चाहे जितना पानी हो, मगर महज चाहने से तो वह नहीं निकल आता।’

बात सही है। अब देखिए न, ऊँचे-ऊँचे ख्याल किसको नहीं आते? कौन महत्वाकांक्षी नहीं होता? किसकी अन्तरात्मा उच्चतम पद के लिए मिन्नते नहीं करती? मगर महत्ता का सेहरा उन्हीं के सिर बंधता है जो रातदिन अन्तःकरण के बताए रास्ते पर लगातार चलते रहते हैं।

और ऐसे मनस्वी पुरुष सुख और दुःख की परवाह किए बिना अपने उद्देश्य की, अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए दिनरात कठिन परिश्रम करते रहते हैं और सफल होते हैं। ऐसे व्यक्ति कभी तो भूमि पर ही सो जाते हैं कभी पलंग मिल गयी तो उस पर भी सो गए, कभी शाक से भूख मिटा लेते हैं और कभी अच्छा भोजन भी मिल गया तो वह भी ग्रहण कर लेते हैं। कभी फटे पुराने वस्त्र ही धारण कर लेते हैं और कभी सुन्दर वस्त्रों से सुशोभित रहते हैं लेकिन उन पर किसी बात का प्रभाव नहीं पड़ता, अपने कार्य में उपस्थित होने वाले सुख दुःख की परवाह किए बिना वे निरन्तर परिश्रम से अपना काम करते चलते हैं।

हमारे संत महात्माओं ने अपनी तपस्या से जो ज्ञान अर्जित किया—उसका सार परिश्रम ही है। उन्होंने सदा परिश्रम और स्वावलम्बन पर बल दिया। परिश्रम स्वावलम्बन का आधार है। अनेक समस्याओं का समाधान परिश्रम में है। संत कबीर ने कहा है—

‘कर बहियां बल आपनी छाडु, बिरानी आस ।

जाके आंगन है नदी सो कस मरे पियास ॥’

बाइबिल में कहा गया है—

“मरते दम तक तू अपने पसीने की रोटी खाना ।”

आलसी व्यक्ति के प्रति, सुविधाभोगी व्यक्ति के प्रति कही गयी एक विचारक की उक्ति कितनी अच्छी है—

“अगर तूने कुछ नहीं बोया, तो अन्य किसी बोने वाले को जब तू कुछ काटते हुए देखेगा, उस समय तू अपने व्यर्थ समय गँवाने पर लज्जित होगा।”

परिश्रमी व्यक्ति की सब प्रशंसा ही करते हैं। तिरुवत्तुवर के शब्दों में—

‘देखो जो मनुष्य परिश्रम के दुःख, दबाव और आवेग को सच्चा सुख समझता है उसके दुश्मन भी उसकी प्रशंसा करते हैं।’

विस्मार्क ने तो परिश्रम के महत्त्व को और भी बढ़ा दिया है। नवयुवकों के लिए वे अपने सन्देश में कहते हैं ‘नवयुवकों के लिए मेरा सन्देश तीन शब्दों में है—

परिश्रम, परिश्रम, परिश्रम।’

महात्मा गाँधी ने ठीक ही कहा है—वगैर परिश्रम, यानी वगैर तप, कुछ भी नहीं हो सकता है, तो आत्मशोध कैसे हो सके ?

परिश्रम के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए हॉल ने कहा है--

‘याद रखिए आप में एक भी स्नायु ऐसा नहीं है जो काम करने से बलवान् न होता हो; हमारे शरीर, मन या आत्मा की ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो परिश्रम से सुघरती न हो,

परिश्रम के सम्बन्ध में हजरत मुहम्मद साहब की कही हुई यह उक्ति चिन्तन और मनन करने योग्य है—

“जो न तो अपने लिए करता है और न दूसरों के लिए उसे खुदा का इनाम नहीं मिलेगा।”

पवित्रता

आनन्द से बढ़कर दुनिया में सिर्फ एक चीज है, और वह है पवित्रता ।
तभी तो साइरस ने कहा है 'ईश्वर साफ हाथों को देखता है, भरे हाथों को नहीं ।'

जहाँ तन की स्वच्छता आवश्यक है वहीं मनका भी स्वच्छ होना परमावश्यक है ।

लेकिन हमारा तन-मन पवित्र कैसे हो ? तन तो हम स्वच्छ कर लेंगे पर मन को कैसे स्वच्छ करेंगे, कैसे पवित्र करेंगे ? इसके लिए कठिन साधना की आवश्यकता है । गुरु नानक देव ने कहा है—पवित्र वे नहीं हैं जो अपने शरीर धोकर बैठ जाते हैं । पवित्र वे ही हैं जिनके अन्तःकरण में वह रहता है ।

सही अर्थों में सम्पन्नता वहीं है जहाँ पवित्रता है तभी तो आचार्य विनोबा भावे कहते हैं—

'जहाँ पवित्रता है वहाँ सौन्दर्य है; जहाँ सौन्दर्य है वहाँ काव्य है ।'

कोई भी व्यक्ति बहुत पढ़ लिख लेने से पवित्र नहीं हो जाता । जिनका हृदय काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर आदि दोषों से परिपूर्ण है उनके अन्दर पवित्रता नहीं आ सकती । तब फिर पवित्रता कहाँ रहती है ?

जिनके हृदय विशाल हैं, जिनकी भावनाएँ उदार हैं, जिनका हृदय दया का सागर है, जो पर दुःख से दुखी और पर सुख से सुखी होते हैं, जिनके सभी अपने होते हैं, जिनकी वाणी अमृत की वर्षा करती है उन्हीं के हृदय में पवित्रता का सदा निवास है । जिनके हृदय पवित्र होते हैं उनके अन्दर बड़ा बल होता है । एक बिचारक ने कहा भी है अपना हृदय पवित्र रखोगे तो दस आदमियों की ताकत रखोगे ।

अपने कार्यों को सुस्थिरता प्रदान करने के लिए, उन्हें प्रभावशाली बनाने के लिए आवश्यक है कि हमारा अन्तःकरण पवित्र हो क्योंकि बिना अन्दर की पवित्रता के हमारे कार्यों में शालीनता नहीं आ सकती ।

महात्मा गाँधी का कहना है—

'हम निजी जीवन की पवित्रता की आवश्यकता मानते हैं; इतना ही नहीं, हम तो मानते हैं कि अन्तःशुद्धि के बिना केवल बुद्धि से हुए कार्य चाहे जितने अच्छे मालूम होते हों तो भी कभी चिरस्थायी नहीं हो सकते ।'

सत्य के मार्ग में तो न आँखों की जरूरत है और न जीभ की; जरूरत है
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow

पवित्र हृदय की। ऐसा प्रयत्न करो जिससे वह पवित्रता पाकर तुम्हारा मन जाग जाय।

यदि हम पवित्र हैं तो फिर हमें किसी से डरने की आवश्यकता नहीं है। एक विचारक के शब्दों में 'तुम पवित्र हो और किसी से न डरो। धोबी मैले कपड़ों को ही पत्थर पर पछाड़ता है।'

जाय ।
है । एक
कपड़ों

पाप

पाप और पुण्य हमारे जीवन को प्रभावित करने वाले दो ऐसे तत्त्व हैं जिनकी सदा से एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है । कभी-कभी तो इसको अलग कर पाना मुश्किल होता है । इसीलिए हज़रत मुहम्मद ने कहा है—

“पाप क्या है ? जो दिल में खटके ।”

सुकरात का कहना है कि पाप मात्र अज्ञान है । हम यों भी कह सकते हैं कि अज्ञान ही पाप है ।

कुछ लोगों का विचार है कि पाप कर्म से कमाये हुए धन में परिवार के सभी सदस्य जो उसका उपभोग करते हैं उस पाप के भागी होते हैं किन्तु महाभारत इसका निराकरण करता है । महाभारत के अनुसार ‘एक आदमी पाप करके धनादि लाता है, उसका उपभोग घर के सब लोग करते हैं, लेकिन पाप का फल वह अकेला ही भोगता है ।’

एक विचारक ने ठीक ही कहा है—

‘पाप की कल्पना आरम्भ में अफीम के फूल की तरह सुन्दर और मनोहारिणी होती है; किन्तु अन्त में नागिन के आलिंगन की तरह विनाशमयी ।’

हम दूसरों के पापों का लेखा जोखा तो करते हैं किन्तु अपने पापों की ओर ध्यान ही नहीं देते ।

एक विचारक ने पाप के सम्बन्ध में जो बात कही है वह अक्षरशः सत्य है—

‘पाप पहले मज्जेदार लगता है, फिर वह आसान हो जाता है, फिर हर्षदायक; फिर वह बराबर किया जाता है, फिर आदतन किया जाता है, फिर उसकी जड़ जम जाती है, फिर आदमी गुस्ताख हो जाता है, फिर हठी, फिर वह कभी न पछताने का निश्चय कर लेता है और फिर वह तबाह हो जाता है ।’

इसीलिए शेख़सादी कहते हैं—

“पाप कर्म जो करे बुरा है, परन्तु विद्वान् करता है तो बहुत बुरा है । दुराचारी मूर्ख असंयमी विद्वान् से अच्छा है क्योंकि वह तो अन्धा होने के कारण मार्ग से विचल गया, मगर यह आँखें होते हुए कुएँ में जा गिरा ।

आदमी कोई फरिश्ता नहीं है, हो सकता है वह कभी अपना विवेक खोकर पाप कर बैठे । इसलिए कहा भी गया है, पाप में पड़ना मनुष्योचित है; पाप में पड़े रहना दुष्टोचित है; पाप पर दुःखी होना संतोचित है; और तमाम पाप को छोड़ देना

ईश्वरोचित है ।'

यह भी आश्चर्य की बात है कि रोग के डर से आदमी खाना तो बन्द कर देता है, पर दण्ड और मरण के भय से पाप करना नहीं बन्द करता ।

भगवान् बुद्ध लोगों को पाप कर्म के प्रति आगाह करते हुए कहते हैं—जब तक पाप पकता नहीं, तभी तक भीठा लगता है लेकिन जब वह फलने लगता है; तब बड़ा दुःख देता है ।'

श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा है—

‘जो काम अपने को बिलकुल अलग रखकर अपने निजी सुख दुःख, नफ़े नुकसान और जीतहार का बिलकुल खयाल न करते हुए, सिर्फ़ फ़र्ज समझकर किया जाय, उससे करने वाले को पाप नहीं लगता ।’

हज़रत मुहम्मद भी पाप कर्म से लोगों को विमुख करना पवित्र कर्तव्य समझते थे उन्होंने कहा है—

“मैं सिर्फ़ उसी पर अमल करता हूँ जो अल्लाह मुझे हुक्म देता है । मेरा काम इसके सिवाय और कुछ नहीं कि लोगों को बुरे कामों के नतीजों से आगाह करूँ ।”

पुरुषार्थ

महर्षि वाल्मीकि ने कहा है—

‘भलाई चाहने वाले बुद्धिमान् मनुष्य को आने वाली विपत्तियों को सोचकर उनके आने के पहले ही उन्हें दूर करने के उपाय भी ढूढ़ निकालने चाहिए ।’

जो व्यक्ति भाग्य के सहारे हाथ पर हाथ धरे बठा रहता है, उसकी सहायता कोई नहीं कर सकता । उसकी दशा भाग्य के सहारे बैठी मछली की तरह ही होती है—

एक तालाब में तीन बहुत बड़ी मछलियाँ अपने परिवार के साथ रहती थीं । एक दिन उसी तालाब के किनारे कुछ मछुआरे मछलियों को पकड़ने के लिए आपस में बातचीत कर रहे थे । उनकी बातचीत एक मछली ने सुन ली । उसने उन दोनों से भी वह बात बता दी । उसने कहा ‘मछुए कल हमें पकड़ने के लिए आ रहे हैं, मेरी राय में तो हम लोगों को आज ही किसी दूसरे तालाब में चला जाना चाहिए ।’ उन दोनों के कुछ न बोलने पर—पहली मछली बोली ‘मैं तो अपने परिवार के साथ आज ही तालाब छोड़कर चली जा रही हूँ अब तुम लोगों को जो अच्छा लगे उसे करो ।’

बाद में दूसरी मछली ने भी अपना कल्याण उसी में समझा । वह भी अपने परिवार के साथ दूसरे सरोवर में चली गयी ।

तीसरी मछली केवल भाग्य के सहारे ही बैठने वाली थी । उसने कहा ‘जो होने वाला होगा उसे भला कौन रोक सकता है । मैं तो अपने परिवार के साथ यहीं रहूँगी । दूसरी जगह क्यों जाऊँ ?’

वह रात बीत गयी । सबेरा हुआ । मछुओं ने उस तालाब में जाल फैला दिया उन्होंने उस तालाब की सारी मछलियाँ पकड़ लीं । भाग्य के भरोसे बैठने वाली मछली बहुत पछतायी, लेकिन अब पछताने से क्या लाभ ?

जो व्यक्ति अपना काम समय से करता है, पुरुषार्थ पर भरोसा रखता है वह अपना अलग मार्ग भी बनाता है । अपने बाहुबल पर विश्वास रखकर वह बड़े से बड़े कठिन काम कर डालता है ।

श्री अरविन्द घोष का कहना है आदमी एक ही निश्चित मार्ग को स्वीकार करने के बजाय अपने स्वभाव के अनुसार स्वतंत्र रूप से नया रास्ता निकालकर पुरुषोत्तम हो सके तभी यह कहा जा सकता है कि उसने सच्चा पुरुषार्थ किया ।’

पुरुषार्थ में जो सुख है, जो शक्ति है, जो चेतना है वह अन्यतः दुर्लभ है । पुरुषार्थी व्यक्ति स्वावलम्बी भी होता है और स्वावलम्बन पर लाखों स्वर्ग-सुख निष्ठावर

होते हैं। सन्त कबीर का घोष एक पुरुषार्थी के लिए बहुत बड़ा आलम्बन है। वह भाग्य के सहारे बैठने वालों को झकझोरता भी है।

‘कर बहियाँ—बल आपनी छाड़ बिरानी आस।

जाके आँगन है नदी सो कस मरे पियास ॥’

पुरुषार्थ दरिद्रता का नाश करता है। चाणक्य कहते हैं—

“पुरुषार्थ में दरिद्रता नहीं, ईश्वर चिन्तन में पाप नहीं,

मीन धारण करने में कलह नहीं और जागने वालों को कोई भय नहीं।”

प्रश्न

प्रसंग महाभारत का है पाण्डवों के वनवास के समय का। द्रौपदी समेत पांचों भाई प्यास से व्याकुल थे। जल की तलाश में वे भटक रहे थे कि इतने में थोड़ी दूर पर उन्हें एक सरोवर दिखाई पड़ा। उस सरोवर में एक यक्ष रहता था। जल के लिये भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव बारी-बारी से गए किन्तु वापस नहीं आये। बात यह थी कि वे सभी प्यासे थे और किसी की बात सुने बगैर अपनी प्यास पहले बुझाना चाहते थे। परिणाम यह हुआ चारों भाई निष्प्राण हो गये। यक्ष सबको रोकता था कि पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दे दो तब पानी पियो किन्तु उसकी कोई सुनता ही न था।

बहुत देर हो गयी तब युधिष्ठिर भी वहां गये। वहां उन्होंने चारों भाइयों को सरोवर के किनारे पड़े देखा। जैसे ही वे पानी पीने के लिये झुके यक्ष ने उन्हें रोका। 'पहले मेरे प्रश्नों के उत्तर दे दो फिर पानी पियो। युधिष्ठिर ने कहा 'आप कौन हैं' यक्ष ने उत्तर दिया 'मैं यक्ष हूं और इस सरोवर पर मेरा अधिकार है। मेरी आज्ञा के बिना यहां कोई पानी नहीं पी सकता।'।

युधिष्ठिर ने कहा—आपके प्रश्न क्या हैं ?

यक्ष ने कहा मेरे चार प्रश्न हैं।

का च वार्ता किमाश्चर्यं कः पन्थाः कश्च मोदते।

ब्रूहि मे चतुरः प्रश्नान् मृता जीवन्तु बान्धवाः ॥

'बात क्या है, आश्चर्य किसे कहते हैं ? रास्ता क्या है ? और कौन प्रसन्न रहता है। इन चार प्रश्नों के उत्तर आप दे दीजिये और मैं आपके चारों भाइयों को जीवित कर दूँ।'।

युधिष्ठिर ने कहा—आपने पहला प्रश्न पूछा है

बात क्या है ? तो बात है—

अस्मिन् महामोहमये कटाहे सूर्याग्निना रात्रिदिधेन्धनेन।

मासर्तुं दर्वी परिघट्टनेन भूतानि कालः पचतीति वार्ता ॥

यह संसार एक बहुत बड़ा कड़ाहा है जो मोहरूपी घी से भरा हुआ है। सूर्य आग का, रात दिन ईंधन का काम करते हैं। महीने और ऋतुयें दाबी का काम करती हैं। काल सभी प्राणियों को उस कड़ाहे में पकवान की तरह पकाता रहता है यही बात है।

युधिष्ठिर ने कहा—अब दूसरे प्रश्न का उत्तर सुनिए 'आश्चर्य' क्या है ?

विचार गंगा

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम् ।

शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ॥

‘प्रतिदिन अगणित प्राणी काल के द्वारा ग्रस लिये जाते हैं किन्तु जो बचे हुए हैं वे अमरता चाहते हैं इससे बढ़कर दूसरा आश्चर्य क्या हो सकता है यक्ष !’

तीसरा प्रश्न है रास्ता कौन सा है ?

इसका उत्तर सुनिये—

वेदा बिभिन्नाः स्मृतयो विभिन्नाः ।

नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम् ।

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां,

महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥

‘वेदों में मतैक्य नहीं है, स्मृतियां भी अलग-अलग उपदेश देती हैं। कोई ऐसा मुनि नहीं है जिसका मत भिन्न न हो। धर्म का तत्त्व बहुत ही गूढ़ है। जिस मार्ग से बड़े लोग, बुद्धिमान लोग गए हों वही मार्ग है।’

अब अपने चौथे प्रश्न का उत्तर सुनिए ।

आपका प्रश्न है ‘कौन प्रसन्न रहता है ?’

पंचमेऽहनि षष्ठे वा शाकं पचति वै गृहे ।

अनृणी अप्रवासी च स वारिचर मोदते ॥

‘पांचवें या छठे दिन जिस व्यक्ति के घर में केवल शाक ही पकाया जाता हो, लेकिन वह ऋण मुक्त हो और परिवार का कोई व्यक्ति प्रवासी न हो वही प्रसन्न है।’

प्रेम

दुनिया में अनेक रस हैं किन्तु प्रेम का रस अद्भुत है। जिसने इसका स्वाद ले लिया है उसका जीवन सार्थक है।

यह प्रेम है क्या ?

तिरुवल्लुवर कहते हैं 'प्रेम जीवन का प्राण है। जिसमें प्रेम नहीं वह सिर्फ मांस से घिरी हुई हड्डियों का ढेर है। बाहरी सौंदर्य किस काम का जबकि प्रेम, जोकि आत्मा का भूषण है, हृदय में न हो ! प्रेम से हृदय स्निग्ध हो उठता है और उस स्नेहशीलता से ही मित्रतारूपी बहुमूल्य रत्न पैदा होता है।'

प्रेम वास्तव में एक दैवी सम्पदा है। वह हृदय की वस्तु है। उममें दिखावटी-पन की गुंजाइश है ही नहीं। तभी तो शेक्सपियर ने कहा है— 'प्रेम आँखों से नहीं बल्कि हृदय से दिखता है, महात्मा बुद्ध कहते हैं 'प्रेम मनुष्यत्व का नाम है।' यीशुमसीह कहते हैं 'प्रेम संसार की ज्योति है।' सन्त महात्माओं ने अपने अनुभव से प्रेम को जिस प्रकार देखा, पाया, उसके रूप का वर्णन किया। संत कबीर का तो विश्वास है कि प्रेम पापियों को भी सुधार देता है। आपस में लेने-देने से भी प्रेम पैदा होता है। लेकिन वह प्रेम उस लेने-देने की समाप्ति के साथ ही समाप्त हो जाता है। वास्तव में बिना किसी स्वार्थ की गंध के जो प्रेम होता है, वही सच्चा प्रेम है।

कुछ लोग पूछते हैं की प्रेम की सीमा कहाँ तक है ? इसका उत्तर यह है कि कि यदि प्रेम पात्र की कोई सीमा नहीं है, कोई माप नहीं है, तो फिर प्रेम की भी सीमा कहाँ है ?

प्रेम आँखों से बोलता है। जिस प्रेम को प्रकट न किया जा सके वह प्रेम सबसे भिन्न होता है। यदि हम दूसरों से प्रेम करते हैं तो इसका मतलब यह है कि हम स्वयं से प्रेम करते हैं। हमारे वेदों का उद्धोष है—

"परमात्मा मुझे ऐसी आँख दे जोकि संसार के सब पदार्थों को प्रेम की दृष्टि से देखें।" इसी प्रेम से हम एक दूसरे से बंधे हुए हैं। महा कवि गेटे ने ठीक ही कहा है 'प्रेम वह सुनहरी जंजीर है जिससे समाज परस्पर बंधा हुआ है।'

प्रेम के दो लक्षण हैं पहला बाहरी दुनिया को भूल जाना और दूसरा अपने शरीर तक को भूल जाना। जो हम दूसरों के लिए कर सकते हैं, वह शक्ति का परिचायक है और जो हम दूसरों के लिए सहन कर सकते हैं वह प्रेम का परिचायक है।

विनोबा भावे ने प्रेम की दो गतियाँ बतायी हैं— ऊर्ध्वगति और अधोगति। वे कहते हैं—

‘मां से स्त्री पर, स्त्री से पुत्र पर यह प्रेम की अधोगति है। माँ से सन्तों पर सन्तों से ईश्वर पर यह प्रेम की ऊर्ध्वगति है।’

इस संसार में स्वार्थवश प्रेम का ढोंग करने वाले अनेक लोग मिलेंगे। यह भी ध्यान देने की बात है। स्वामी विवेकानन्द ने हमें आगाह किया है

‘जब तक तेरे पास थोड़ी बहुत सम्पत्ति है, तब तक प्रेम, प्रेम हुकर अनेक लोग तेरे इर्द गिर्द इकट्ठे हो जाते हैं, थैली खाली होते ही मौसी तक पास खड़ी नहीं होती। मगर ईश्वर तेरे पास हर जगह और हर समय रहता है; वह तुझे भले-बुरे वक्त भी नहीं छोड़ता; उसी का प्रेम निरपेक्ष है; उसका प्रेम तुझे अधोगति में नहीं जाने देगा।’

प्रेम शक्ति से भी महान् है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बड़े ही रोचक ढंग से यह बात कही है—

शक्ति ने दुनिया से कहा, ‘तू मेरी है;’ दुनिया ने उसे अपने तख्त पर कैदी बनाकर रक्खा। प्रेम ने दुनिया से कहा, ‘मैं तेरा हूँ;’ दुनिया ने उसे अपने घर की आजादी दे दी। गोस्वामी तुलसीदास ने जल और दूध का उदाहरण देकर प्रेम को और भी स्पष्ट किया है—

‘जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति की रीति भलि ।

बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि ॥’

जल दूध से मिलकर दूध के भाव विकता है। देखिए, प्रेम की यह कैसी अच्छी रीति है। लेकिन अगर प्रेम में कपट आ पड़े तो मिले हुए हृदय ऐसे फट जाते हैं जैसे खटाई पड़ने से दूध और पानी अलग-अलग हो जाते हैं।

फल

एक बहुत पुरानी कहानी है। एक किसान के चार लड़के थे। पूरा परिवार सुखी था। बच्चे सुख में ही पले थे। ज्यों-ज्यों उस किसान की उम्र ढलती जा रही थी त्यों-त्यों लड़कों के प्रति उसकी चिन्ता भी बढ़ती जा रही थी। लड़के न तो पिता के समान परिश्रमी थे और न ही बुद्धिमान।

एक दिन किसान ने चारों लड़कों को बुलाकर अपने पास बैठाया। बड़े प्यार से उनसे कहा, “मेरे प्यारे पुत्रो ! जानते हो मैंने तुम लोगों को क्यों बुलाया है ?”

“नहीं” सबने एक साथ उत्तर दिया। “तुम लोग तो देख ही रहे हो कि मैं अब वृद्ध हो गया। आज मैंने सोचा कि तुम लोगों को अपने गुप्त धन के विषय में भी बता दूँ। मैंने अपने धन को खेतों में गाड़ रखा है। उस धन को तुम लोग तभी निकालना जब मैं इस संसार में न रहूँ।”

यह बात किसान ने एकान्त में अपने लड़कों के कान में कही। लड़के भी पिता की बात गाँठ बाँधकर अपना काम करने लगे।

समय बीतता गया और एक दिन वह किसान इस संसार से चल बसा। कुछ दिन बाद पिता के कथनानुसार उन्होंने फावड़े से अपने खेत खोदने आरम्भ किये। उनके मन में था कि पिता जीने हण्डों में या घड़ों में गिन्नयाँ या सोने चाँदी रखे होंगे। सारे खेत खोद डाले गये पर गड़ी हुई सम्पत्ति का कहीं पता न चला, हताश होकर चारों के चारों अपने पिता को ही मन ही मन कोसने लगे।

अब घर गृहस्थी का सारा भार उन्हीं चारों के ऊपर ही था। नयी फसल का समय आया। इस बार किसान के चारों बेटों ने खेतों में बीज डाले। थोड़े समय में ही बीजों से अच्छे और स्वस्थ अंकुर निकले और जब फसल तैयार हुई तो गाँव में सबसे अधिक पैदावार इसबार उसी के यहाँ हुई। इतनी पैदावार तो किसान को कभी नहीं मिली थी।

गाँव-गाँव में किसान के लड़कों की चर्चा होने लगी। एक दिन चारों लड़के आपस में बैठकर अपने पिता जी की बात पर विचार कर रहे थे अब सब समझ चुके थे कि पिता जी ने उन्हें परिश्रम, कठिन परिश्रम करने की बात बतायी थी। उस दिन से किसान के चारों लड़कों ने एक रहकर परिश्रम और ईमानदारी से अपना काम करने का दृढ़ निश्चय किया।

फल तो कर्म के अधीन है। यदि हम श्रम करते हैं, अपना कर्तव्य करते हैं तो

फल तो उसी में समाहित है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस बात को बहुत ही मर्म-स्पर्शी ढंग से कहा है—

“ऐ फल, तू मुझसे कितनी दूर है ?” “मैं तेरे हृदय में छिपा हूँ, फूल।”
आचार्य विनोबा भावे कहते हैं फल तुझे पहले ही मिल चुका है अब तो कर्म करना बाकी रह गया है, फिर फल कैसे माँगता है। हमारे जीवन में कर्म का बहुत बड़ा स्थान है। रस्किन के शब्दों में—

“निश्चय करो कि दिन की कोई घटना तुम्हें अप्रसन्न नहीं कर पायेगी। अपने काम को इस अनुपम और पवित्र निर्णय से शुरू करो कि उसके साथ न मिलने पायेगी महत्वाकांक्षा, न लाभ की आसक्ति, न सुख की अभिलाषा; और उसके फल की कोई चिन्ता तुम्हें स्पर्श न करेगी और न असफल होने पर कोई अधीरता या दुःख।”

बुद्धि

पंचतन्त्र की कथा है—‘एक तालाब में तीन बड़ी मछलियाँ अपने परिवार के साथ रहती थीं। एक दिन कुछ मछुआरे उसी तालाब के किनारे आपस में बातचीत कर रहे थे। उनकी बातचीत एक मछली ने सुन ली। उसने तालाब की उन दोनों बड़ी मछलियों से कहा “मैंने मछुआरों की बातें सुन ली हैं। वे कल ही इस तालाब में सारी मछलियों को पकड़ने के लिए जाल बिछाएँगे। मैं तो अपने परिवार के साथ आज ही तालाब छोड़कर चली जा रही हूँ। अब तुम लोगों को जो अच्छा लगे उसे करो।”

दूसरी मछली ने जब यह बात सुनी तब वह भी अपने परिवार के साथ दूसरे सरोवर में चली गयी। तीसरी मछली भाग्यवादी थी। उसने कहा। ‘जो होने वाला होगा उसे कौन रोक सकता है। मैं तो अपने परिवार के साथ यहीं रहूँगी।’

दूसरे दिन मछुआरों ने उस तालाब में जाल डाल दिया। उन्होंने तालाब की सारी मछलियों को पकड़ लिया। अब वह मछली जो तालाब छोड़कर गयी नहीं थी, वह पछताने लगी लेकिन अब पचताने से कोई काम बनने वाला नहीं। इसीलिए हमारे सन्त-महात्मा, पीर-फकीर सभी उपदेश देते रहे हैं कि समय से अपना काम कर लो।

महर्षि वाल्मीकि ने ठीक ही कहा है —

‘कल्याण चाहने वाले बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह आने वाली विपत्तियों की शंका करता हुआ उनके आने से पहिले उनको दूर करने के उपाय भी बूढ़ निकाले।’

यह काम होता है उत्साह से। उत्साह में बड़ा बल होता है, उत्साह से बढ़कर दूसरा बल नहीं है। संसार में उत्साह सम्पन्न मनुष्य के लिए कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। इसके विपरीत जो व्यक्ति उत्साही नहीं है, जो दीन है और सदा शोक ही में डूबा रहता है उसके सब काम बिगड़ जाते हैं वह स्वयं अपने ऊपर कष्ट बुलाता है।

इसीलिए यदि पिता द्वारा खुदवाये गये कुएँ का पानी खारा है तो कायर ही उस कुएँ का पानी पिएगा। उत्साह सम्पन्न व्यक्ति तो दूसरा कुआँ खोद लेगा।

कायर और शक्तिहीन मनुष्य भाग्य के पीछे चलता है परन्तु प्रतिष्ठित वीर-जन देव या भाग्य की उपासना नहीं करते।

सभी उपनिषदें बुद्धि को ही महत्त्व देती हैं क्योंकि जहाँ बुद्धि होती है वहाँ सब काम बन जाते हैं।

जिसका बुद्धि रूपी सारथी चतुर हो और मन रूपी लगाम जिसके हाथ में

हो, वह इस संसार में अपने लक्ष्य तक सरलता से पहुँच सकता है ।

जिसके पास बुद्धि है उसी के पास बल है जिसके पास बुद्धि नहीं उसके पास बल कहां से आएगा ।

बुद्धि का महत्त्व इसलिए है कि उससे भलाई बुराई का पता चल जाता है वह सत्य और झूठ की पहचान करा देती है । तिरुवल्लुवर का कहना है—सद्बुद्धि का काम है कि हर एक बात में झूठ को सत्य से निकालकर अलग कर दे, फिर उस बात का कहने वाला कोई भी क्यों न हो ।

हमें तत्त्व ग्रहण करने वाली बुद्धि की ही आवश्यकता है । सन्त कबीर ने इसी बुद्धि से युक्त साधु पुरुष की बात कही है अपनी इस वाणी में—

साधू ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय ।

सार सार को गहि रहै थोथा देइ उड़ाय ॥

बुराई

‘बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय ।

जो दिल खोजूँ आपनो, मुझसा बुरा न होय ॥’

संत कबीर के कहने का तात्पर्य यह है कि पहले अपने को ठीक करो । तन के साथ ही साथ मन को भी स्वच्छ रखो । दर्पण की भाँति हम दोहरी ज़िन्दगी ही तो जीते हैं जब दूसरों के एक दोष पर उँगली उठाते हैं किन्तु अपने हजार दोष मन में छिपाए बैठे रहते हैं ।

‘एक अरबी कहावत है बुराई के बदले भलाई करो, बुराई दब जाएगी; बुराई के बदले बुराई करोगे तो बुराई लौटकर आएगी । बात सच है । हम जैसा बर्ताव दूसरे के साथ करेंगे दूसरा भी हमारे साथ उसी तरह बर्ताव करेगा ।

जो दूसरों को गिराने के लिए गड़ढा तैयार करता है उसके लिए पहले ही गड़ढा तैयार मिलता है । परिणाम यह होता है कि गड़ढा खोदने वाला पहले ही अपने पैर स्वयं तोड़ लेता है । इसीलिए हमारे ऋषियों, महर्षियों, सन्त महात्माओं ने भलाई को महत्व दिया । उन्होंने बुराई की निन्दा की । सन्त अपनी सज्जनता नहीं छोड़ते चाहे जितनी विपत्तियाँ आ जायें । पर ऐसे भी अनेक व्यक्ति मिलेंगे जो बुराई का जवाब बुराई से, अच्छाई का जवाब अच्छाई से देंगे । और ऐसे ही लोगों से बुराई करने वाले व्यक्ति डरते भी हैं । वे ईंट का जवाब पत्थर से पा जाते हैं और चुप हो बैठ जाते हैं पर मौका मिलने पर वे फिर अपने काम करना शुरू कर देते हैं ।

एक सज्जन व्यक्ति की, सबका भला चाहने वाले व्यक्ति की गति कहीं है ? सज्जन व्यक्ति को लोग कायर, दबू, बुद्धू आदि नामों से पुकारते हैं । यदि किसी अशिष्ट व्यक्ति ने उसे गाली दे दी तो वह सहन कर लेगा और मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना करेगा कि प्रभो इसे सद्बुद्धि दो, ज्ञान दो । पर एक भी अप्रिय शब्द नहीं बोलेंगा । क्या यह कायरता है ? नहीं । पर लोग ऐसा ही सोचते हैं ।

सज्जन इस बात की परवाह नहीं करते कि उन्हें कौन भला कहता है और कौन बुरा । वे अपना काम करते हैं । मन, वाणी और अपने शरीर से सन्त जन दूसरों की भलाई करते रहते हैं । यदि किसी में थोड़े गुण हैं तो वे उसमें असंख्य गुण देखते हैं । लेकिन ऐसे सज्जन, ऐसे मनीषी हैं कितने ?

हज़रत मुहम्मद साहब का कहना है ‘निन्दा किसी की न करो । दूसरे की निन्दा या

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow

बुराई तो सुनने में हमें अच्छी लगती है परन्तु अपनी बुराई अच्छी नहीं लगती। इस पर भी हमें विचार करना चाहिए और विचार करके दूसरे की निन्दा, दूसरे की बुराई छोड़ देनी चाहिए।'

आज के युग में बहुत से व्यक्ति मिलेंगे जो सामने नहीं पीठ पीछे बुराई करते हैं। यह बहुत ही निकृष्ट काम है। इस सन्दर्भ में तिरुवल्लुवर के विचार बहुत ही मनन करने योग्य हैं। "नेकी से विमुख हो जाना और बदी करना वेशक बुरा है, मगर सामने हंस कर बोलना और पीठ पीछे निन्दा करना उससे भी बुरा है। पीठ पीछे किसी की निन्दा न करो, चाहे उसने तुम्हारे मुंह पर ही गाली दी हो।"

सन्त कबीर तो निन्दक को पास रखने के पक्षधर हैं। वे कहते हैं—

"निन्दक नियरे राखिए आंगन कृटी छवाय।"

भलाई

63

‘अगर तुम कोई अच्छा काम करना चाहते हो तो उसे अभी करो और यदि बुरा काम करने वाले हो तो कल तक ठहरो।’ एनन का यह कथन हमें यह सोचने-विचारने के लिए बाध्य कर देता है कि भलाई करने का ऐश्वर्य हर व्यक्तिगत सुख के उपभोग से बढ़कर है।

हम यदि चाहते हैं कि अच्छा काम करें, दूसरों का भला करें तो सबसे पहले हमें स्वयं नेक बनना पड़ेगा। नेक बनकर हम अधिक निष्ठा और आत्मविश्वास से अपना काम कर सकते हैं। एक विचारक का कहना भी है कि अन्य किसी मार्ग की अपेक्षा नेक बनकर हम अधिक भलाई कर सकते हैं।

इस सम्बन्ध में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने क्या कहा है—इस पर भी विचार कर लेना बहुत आवश्यक है—उनका कहना है—

‘जो सदा भलाई करने में ही लगा रहता है उसे भला बनने का समय नहीं मिलता है।’

गुरुदेव का यह वाक्य बहुत ही गम्भीर अर्थ का बोध कराता है। बुरा व्यक्ति भला काम कैसे करेगा। यदि वह भला काम करता तो उसे बुरा क्यों कहा जाता। हम समझते हैं कि जो व्यक्ति दूसरे को सुख पहुँचाने का काम करता है, सबके हित की भावना से उसका मन भरा हुआ है उस व्यक्ति के पास इतना भी समय नहीं है कि वह यह सोच सके कि क्या वह भला है? वह तो स्व को भूलकर काम करता है। जब कोई व्यक्ति स्व को, अपने को भूलकर, अहं को मिटाकर काम करता है तब तो वह भला है ही, उस अवस्था का वर्णन तो किया ही नहीं जा सकता।

इस संसार में हर आदमी सारी दुनिया की कोमत पर अपनी भलाई चाहता है। ऐसी दशा में अपनी हानि कौन चाहेगा? और यह भी कि दूसरों को हानि पहुँचाकर अपनी भलाई कभी भी नहीं करनी चाहिए। जिसने भलाई करने का संकल्प लिया उसका भला तो पहले ही हो गया।

कन्फ्यूशियस के शब्दों में—

‘जो दूसरों की भलाई करना चाहता है, उसने अपना भला तो कर भी लिया।’

मानव जीवन की सबसे बड़ी उपयोगिता इसी में है कि वह भलाई करे। यदि इस जीवन में भी मनुष्य केवल भोग और ऐश्वर्य को ही अपने जीवन का परम लक्ष्य

समझ ले तो यह कहा जा सकता है कि वह एक विशेष प्रकार का पशु है। इससे बढ़कर उसे और क्या कहेंगे।

सर फिलिप सिडनी ने ठीक ही कहा है—

‘भलाई करना ही इन्सान की जिन्दगी का एकमात्र शक्तियाँ सुख देने वाला काम है।’

भलाई के बदले भलाई चाहने वालों की भी कमी नहीं है। आज की स्वार्थ-भरी दुनिया में बिरले ही हैं जो भलाई के बदले भलाई नहीं चाहते। भलाई चाहने वाले व्यक्तियों को चाहिए कि वे आरिलियस के इस कथन को अमल में लायें—

‘तुमने भलाई की और उससे तुम्हारे पड़ोसी का भला हो गया। अब तुम्हें इतने मूर्ख बनने की क्या जरूरत है कि तुम इसके भी आगे देखो और नाम तथा बदले में भलाई के लिए मुँह फैलाये रहो?’

यदि हम ध्यान से देखें तो हमें पता चलेगा कि हम भलाई करने के साथ-साथ अपनी भी भलाई करते चलते हैं। भावी फल के रूप में नहीं, बल्कि उसी समय, क्योंकि नेकी करने का आभास, स्वयं ही बहुत बड़ा पुरस्कार है।

माटिनी का कहना है—भलाई चाहना पशुता है, भलाई करना मानवता है; भला होना दिव्यता है।’

उस दिव्यता के लिए हम क्यों न प्रयास करें। एक विचारक की यह उक्ति हम सबके लिए सदा स्मरण और मनन करने योग्य है ‘दिल, कोशिश तो कर! भला बनना कितना आसान है। और भला दिखना कितना बोझिल।’

पं० विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी का विचार है—‘भलाई का पर्याय है मानवता।’

मधुर वचन

हम अपने सरल स्वभाव से दूसरे को अपना साथी या मित्र बना सकते हैं, हम उसे प्रभावित कर सकते हैं। यही बात हमारे देश के ऋषियों-महिषियों तथा दूसरे देश के विचारकों ने भी कही है। हमारी संस्कृति में तो यहां तक कहा गया है कि अप्रिय सत्य भी नहीं बोलना चाहिए—

“सत्य बोलिए, लेकिन प्रिय सत्य, ऐसा सत्य न बोलिए जो सुनने में अप्रिय लगे। ऐसा प्रिय वचन भी न बोलिए जो असत्य हो—यही सनातन धर्म है। लेकिन ऐसी वाणी का प्रयोग कम ही होता है। यही बात बतायी है विदुर ने धृतराष्ट्र को—

‘वाणी का संयम अत्यन्त ही कठिन समझा जाता है। ऐसी बातें जो वास्तव में अर्थपूर्ण भी हों और विचित्र भी, बहुत नहीं कही जा सकतीं।’

कटुवचन का प्रयोग अच्छा नहीं। इससे विवाद ही बढ़ता है। कड़वी बात तीर के समान हृदय को विदीर्ण कर देती है। संत कबीर ने तो कहा ही है—

मधुर वचन है औषधी कटुक वचन है तीर।

खवन द्वार हैं संचरं सालै सकल सरीर ॥

हाफिज का कहना है—

‘सुबह दम बुलबुल ने नये खिले हुए फूल से कहा। ‘नाज कम कर, इस बारा में तुझसे बहुत खिल चुके हैं।’ फूल हंसकर बोला, ‘मैं सच्ची बात पर रंज नहीं करता। मगर बात यह है कि कोई आशिक अपने माशूक से सख्त बात नहीं कहा करता।’

प्रायः जब हम क्रोध की मुद्रा में होते हैं तब कड़वी बातों का प्रयोग खूब करते हैं, क्रोध के शान्त होने पर पछताते हैं लेकिन उस पछताने से क्या लाभ? तब तक तीर तो छूट चुके होते हैं।

इसीलिए प्रेम पूर्ण और सद्भाव पूर्ण जीवन के लिए कुछ गुणों की आवश्यकता होती है उन्हीं गुणों से मनुष्य महान् बनता है। गुणों में मधुरवाणी मुख्य गुण है।

एक बार विद्वानों की एक सभा में यह प्रश्न पूछा गया कि ‘अमृत कहाँ है?’

एक विद्वान् ने कहा ‘अमृत समुद्र में है’ दूसरे विद्वान् ने कहा ‘अमृत चन्द्रमा में है’ तीसरे ने कहा ‘अमृत स्त्री के मुँह में है’ चौथे विद्वान् ने कहा ‘अमृत सपों के फन में है। पाँचवें ने कहा—‘अमृत स्वर्ग में है, छठे विद्वान् ने कहा ‘अभी जिन

स्थानों पर अमृत होने की बात कही गयी वह ठीक नहीं है क्योंकि यदि समुद्र में अमृत होता तो वह खारा न होता । चन्द्रमा में भी अमृत नहीं है क्योंकि वह घटता बढ़ता रहता है । यदि स्त्री के मुँह में अमृत है तो फिर उसका पति क्यों अमर नहीं हो जाता । यदि साँपों के फन में अमृत है तो वह विषैला क्यों होता है । यदि स्वर्ग में अमृत है तो पुण्यक्षीण होने पर देवता वहाँ से पृथ्वी पर वापस क्यों आते हैं ? उन विद्वानों ने कहा 'फिर आप ही बता दीजिए न कि अमृत कहाँ है ? विद्वान् ने बड़े विनम्र स्वर में कहा 'जो सन्तजन हैं, जो सबमें समान दृष्टि से एक ही तत्त्व के दर्शन करते हैं, जो सबको प्रसन्न देखना चाहते हैं, ऐसे व्यक्तियों के कण्ठ में अमृत होता है ।

मित्र-अमित्र

मित्र किसे कहते हैं ? अमित्र कौन है ? मित्र के क्या गुण हैं ? अमित्र की क्या पहचान है ? इसकी अच्छी जानकारी होनी चाहिए । क्योंकि सच्चे मित्र हीरों की तरह कीमती तथा दुर्लभ हैं और झूठे पतझड़ की पत्तियों की तरह हर जगह मिलते हैं ।

स्वार्थवश लोग सुख में मित्र बन जाते हैं किन्तु दुःख में उसे पूछते तक नहीं । जो मित्र विपत्ति में साथ देता है वही सच्चा मित्र है । भर्तृहरि ने अपने नीतिशतक में अच्छे मित्र के जो लक्षण बताये हैं वे स्मरण करने योग्य हैं—

पापान्निवारयति योजयते हिताय,

गूह्यं च गूहति गुणान् प्रकटीकरोति ।

आपद्गतं च न जहाति ददाति काले,

सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥

अच्छा मित्र पाप कर्मों से, निकृष्ट कर्मों से दूर करता है, वह सदा अच्छे काम में ही अपने मित्र को प्रेरणा देता है । वह अपने मित्र की छिपाने योग्य बात को छिपाता है लेकिन उसके अच्छे गुणों का बखान करता है । मित्र यदि विपत्ति में पड़ जाता है तो वह उसका साथ देता है । आवश्यकता पड़ने पर उसकी सहायता करता है । सच्चे और अच्छे मित्रों की तो यही पहचान है ।

जो मित्र के दुःख से दुःखी न हो वह मित्र कैसा ? उसे तो देखना ही पाप है । जो अपने पहाड़ से दुःख को धूल के एक कण के समान और मित्र के कण सरीखे दुःख को पर्वत के समान देखता है, अनुभव करता है वही सच्चा मित्र है ।

गोस्वामी तुलसीदास ने इसे इस तरह स्पष्ट किया है—

जो न मित्र दुःख होहि दुःखारी ।

तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ॥

निज दुख गिरि सम रज करि जाना ।

मित्र क दुःख रज भर समाना ॥

कुपथ निवारि सुपथ चलावा ।

गुन प्रगटे अवगुनहि दुरावा ॥

देत लेत मन संक न धरई ।

बल अनुमान सदा हित करई ॥

विपति काल कर सतगुन नेहा ।

मृति कह संत मित्र गुन एहा ॥

मित्र की पहचान के लिए अमित्र के लक्षण भी जानने चाहिए ।

जो जवरन दूसरे का धन ले लेता है, जो कोरी बातें बनाता है, जो सदा मीठी बातें करता है, जो घुरे कामों में मित्र की सहायता करता है वह मित्र होते हुए भी शत्रु ही है । ऐसे लोगों के साथ मित्रता करनी हीं नहीं चाहिए ।

महात्मा बुद्ध का कहना है—

जो मित्र को गन्दे काम करने की अनुमति देता है, गलत होने पर भी मित्र की सामने तो प्रशंसा करता है किन्तु पीछे उसकी निन्दा करता है वह मित्र नहीं शत्रु है । जो मदिरा पान जैसे कर्मों में साथ देता है, आबारागर्दी में मित्र को प्रोत्सा-
देता है, उसे कुमार्ग पर ले जाता है, वह मित्र नहीं, शत्रु है । ऐसे शत्रु रूपी मित्र को खतरनाक रास्ते की भाँति छोड़ देना चाहिये ।

पिता के कन्धे पर बैठकर जिस प्रकार पुत्र विश्वासपूर्वक सोता है उसी प्रकार जिसके साथ विश्वासपूर्वक बतवि किया जा सके और दूसरे जिसे अपनी ओर न कर सकें, वही सच्चा मित्र है ।

लालच

पञ्चतन्त्र की कथा है—किसी देश में एक बड़ा तालाब था। उसमें तरह-तरह के पानी के जानवर रहते थे। वहाँ रहने वाला एक बगुला बूढ़ा हो गया तो उसमें मछलियाँ पकड़ने को शक्ति न रही। एक दिन भूख के कारण वह तालाब के किनारे बैठकर रोने लगा। बगुले का रोना सुनकर एक केकड़ा उस तालाब में रहने वाले दूसरे साथियों के साथ उसके पास आया। बगुले के दुःख से दुःखी केकड़े ने कहा 'मामा ! आज तुम खाते क्यों नहीं ? आँखों में आँसू भरकर साँस क्यों खींच रहे हो' ?

केकड़े ने कहा—“बेटा ! तुमने ठीक समझा। मैंने मौत आने तक न खाने का व्रत लिया है इसलिए मैं मछलियाँ नहीं खाता।”

यह सुनकर केकड़े ने पूछा—“आप ऐसा क्यों कर रहे हैं ?” उसने कहा—“बेटा ! मैं इसी तालाब में बड़ा हुआ हूँ। मैंने यह सुना है कि अब लगभग बारह साल तक यहाँ पानी नहीं बरसेगा।”

केकड़े ने पूछा—“तुमने यह कहाँ से सुना ?”

बगुला बोला—“मैंने यह एक ज्योतिषी से सुना है। इस तालाब के सूख जाने पर जिसके साथ मैं बड़ा हुआ, सदा खेला, वे सभी पानी के बिना मर जाएँगे। मैं यह नहीं देख सकता। इसलिए मैंने यह व्रत लिया है।”

आज छोटे तालाबों के रहने वालों को उसके सम्बन्धी बड़े तालाबों में ले जा रहे हैं। मगर इस तालाब वाले बेफिक्र हैं। इस वजह से मैं और भी रो रहा हूँ क्योंकि उनमें से एक का भी नाम-निशान नहीं बचेगा।”

बगुले की ये बातें केकड़े ने सबसे कहीं। तब सारे घछली-कछुए आदि डर कर बगुले के पास आए और पूछने लगे—“मामा, क्या कोई ऐसा उपाय है जिससे हम बच सकें ?” बगुले ने कहा—“इस तालाब से थोड़ी दूर पर पानी से भरा एक गहरा तालाब है। अगर चीबीस साल भी पानी न बरसे तो भी वह सूख नहीं सकता। जो कोई मेरी पीठ पर चढ़ जायगा, उसे मैं वहाँ ले जाऊँगा।” इस पर “चाचा, पहले मैं ‘मामा पहले मैं’ ऐसा चिल्लाते हुए तालाब के सब जीवों ने उसे चारों ओर घेर लिया। अब तो वुष्ट बगुला बारी बारी से उन्हें पीठ पर बढ़ाकर पास ही एक चट्टान पर ले जाता और उन्हें खा जाता, फिर लौटकर झूठी झूठी बातें सुनाकर दूसरों का मन बहलाता। इस प्रकार रोज वह अपना भोजन पाने लगा।

एक दिन केकड़े ने कहा—“मामा ! मेरे साथ तेरी सबसे पहले बात हुई थी,

फिर तू मुझे छोड़कर दूसरों को क्यों ले जाता है ?”

यह सुनकर दुष्ट बगुले ने सोचा, रोज रोज मछली खाने से मैं बीमार हो गया हूँ, इसलिए अब केकड़ा खाना ठीक रहेगा। ऐसा मन में निश्चय कर, वह केकड़े को पीठ पर चढ़ाकर चट्टान की ओर चल पड़ा। केकड़े ने पूछा “मामा ! वह तालाब अभी कितनी दूर है ?”

यह जानकर कि केकड़ा मूर्ख है और जमीन पर यह कुछ न कर सकेगा, बगुला हँस पड़ा और बोला—“अरे केकड़े ! दूसरा तालाब कहीं नहीं है। यह तो मेरी रोजी है। अपने भगवान् को याद कर, क्योंकि अब मैं तुझे इसी चट्टान पर पटक कर खाऊँगा।”

बगुला यह कह ही रहा था कि केकड़े ने अपने दोनों आरों से उसकी गर्दन काट दी। बाद में केकड़ा बगुले की फटी हुई गर्दन लेकर तालाब पर पहुँचा। उस तालाब के बचे हुए जीवों ने उससे पूछा “अरे तू कैसे लौट आया, मामा क्यों नहीं लौटे ?”

केकड़े ने हँसकर पूरी कहानी सुनाई और कहा “अब किसी को घबराने की जरूरत नहीं। आज से सबका भला होगा।”

इसलिए सन्त महात्माओं ने कहा है ‘लालच बुरी बला है’ सन्त कबीर ने ठीक ही कहा है—

जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप ।

जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप ॥

— — — — —

विचार

हमारे जीवन में विचार का बहुत बड़ा स्थान है। हम जिन विचारों की दुनिया में विचरते हैं उसमें हम कभी न कभी अपने जीवन को मूर्तिमान देखेंगे।

श्री रामकृष्ण परमहंस का कहना है—

“जो सोचता है कि मैं जीव हूँ, वह सचमुच जीव ही रहता है; जो अपने को ब्रह्म मानता है वह सचमुच ब्रह्म हो जाता है। जो जैसा सोचता है वैसा बन जाता है।”

प्रायः हम दूसरों के विचारों से प्रभावित होते हैं और उन विचारों को ग्रहण कर लेते हैं। यदि विचारों को ग्रहण करके हम उन्हें अपना बना लें तो उससे हम अपने को बहुत कुछ सुधार सकते हैं। इसी सम्बन्ध में महात्मा गाँधी ने कहा है—

‘किसी के विचारों को हमने ग्रहण तो कर लिया, पर पचा न सके, उन्हें अपने हृदय में स्थिर न कर सके, उनपर अमल न कर सके तो वह एक प्रकार का अजीर्ण ही है; बुद्धि का विलास है। विचारों का अजीर्ण भोजन के अजीर्ण से कहीं बुरा है। भोजन के अजीर्ण के लिए तो दवा है, पर विचारों का अजीर्ण आत्मा को बिगाड़ देता है।’

विचार चाहे पुराने हों, चाहे बहुत बार प्रस्तुत किये जा चुके हों, यदि वे अच्छे हैं तो पुराने होने पर भी वे नवीन ही हैं। हमारा जीवन, हमारा रहन-सहन विचारों से प्रभावित होता है। जहाँ विचार का महत्त्व है वहीं अच्छी तरह विचार करके काम करने का भी महत्त्व है। बिना विचारे कोई काम नहीं करना चाहिए—

बिना विचारे जो करे सो पीछे पछताय ।

काम बिगारे आपनो जग में होत हंसाय ॥

बिना विचारे उतावली में कोई काम कभी न करना चाहिए। अविचार सब विपत्तियों का मूल है। विचार पूर्वक कार्य करने वाले की कामनाएँ स्वयं पूरी हो जाती हैं।

हम अच्छे-अच्छे विचारों को चुन कर अपना कोश बढ़ा सकते हैं। उन अच्छे विचारों से हम अपनी परिस्थितियों को बदल भी सकते हैं क्योंकि अच्छे विचार सुख-दुख में हमारा साथ देते हैं।

जेम्स ऐलन के विचार से—

‘मनुष्य अपनी परिस्थितियों को प्रत्यक्षतः नहीं चुन सकता, लेकिन वह अपने विचारों को चुन सकता है, इस तरह परोक्ष रूप से किन्तु लाजिमी तौर पर अपनी परिस्थितियों का निर्माण कर सकता है।’

एमर्सन तो यहां तक कहते हैं कि विचार से अधिक ठोस चीज़ ब्रह्माण्ड में नहीं है ।'

वाइबिल के अनुसार जो जैसा अपने दिल में सोचता है वैसा ही है ।

जो बुरे विचारों में लीन है वह नरक में ही है , जो ऊँचे, आनन्द दायक विचारों में लीन है वह स्वर्ग सुख का यहीं, इसी क्षण उपभोग कर रहा है ।

स्वर्ग और नरक बाद में या दूसरे स्थान में हों तो हों पर 'नरकद स्वर्ग' और 'नरकद नरक' भी हैं जिनका निर्माण हम उसी क्षण अपने अच्छे या बुरे विचारों द्वारा करते हैं ।

विचार हैं वे साधन जो सभ्यता को उठाते हैं । वे जन जागरण लाते हैं । बहुत से कामों की अपेक्षा एक विचार में अधिक शक्ति होती है ।

विचारों के सम्बन्ध में बेकन ने बहुत अच्छी बात कही है—

'मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी जेब में कागज़ पेन्सिल रखे, और समय के विचारों को तुरन्त लिख डाले जो अनायास उठते हैं, वे प्रायः सबसे अधिक मूल्यवान होते हैं । उन्हें सम्हालकर रखना चाहिए क्योंकि वे बराबर नहीं आते हैं ।'

— — — — —

सन्तोष

सन्तोष को परम सुख और असन्तोष को परम दुःख माना गया है। सन्तोष जीवन में स्थिरता लाता है। इसीलिए जो संतुष्ट नहीं है वह स्थिर बुद्धि भी नहीं है। जो व्यक्ति स्थिर बुद्धि नहीं है वह अपना कल्याण कदापि नहीं कर सकता। असन्तोष और लालच दोनों का परस्पर प्रगाढ़ सम्बन्ध है। लालच के बढ़ने पर असन्तोष अपने आप बढ़ता जाएगा। लालच को वश में रखिए असन्तोष कम होता जाएगा। लालची कभी सुखी नहीं रहता।

एक बार की बात है एक शिकारी जंगल में शिकार खेलने गया। वहाँ उसे एक बहुत बड़ा सुअर दिखाई पड़ा। शिकारी ने उस पर तीर चला दिया। तीर ठीक निशाने पर लगा। वह छटपटाने लगा। उसी छटपटाहट में उसे बहुत क्रोध आ गया। वह बड़ी तेजी से शिकारी पर झपटा और अपने दाँतों से उसका पेट चीर डाला। शिकारी वहीं ढेर हो गया। थोड़ी देर बाद वह सुअर भी मर गया। कुछ समय के बाद घूमते-घूमते वहाँ एक गीदड़ पहुँच गया। शिकारी और सुअर को मरा देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सोचा कि कई दिन के भोजन की व्यवस्था हो गयी। उसके मन में लालच भी आ गया। उस लालची गीदड़ को शिकारी का धनुष दिखाई दिया। उसमें ताँत की डोरी लगी थी। उसने सोचा कि आज तो इस ताँत की डोरी से ही काम चलाऊँगा। यह सोचकर वह धनुष की डोरी खाने लगा। डोरी तो टूट गयी किन्तु धनुष की एक नोक उसके मुँह में से मस्तक को छिन्न-भिन्न करती हुई ऊपर निकल गयी। इससे वह गीदड़ भी इस दीन दुनिया से चल बसा। इसीलिए संग्रहवृत्ति जो कि लालच और असन्तोष का ही परिणाम है, अच्छी नहीं।

असन्तोष के सम्बन्ध में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का यह कथन कितना सत्य है—

चिड़िया कहती है “काश मैं बादल होती ?”

बादल कहता है “काश मैं चिड़िया होता।”

हमें अपने से असन्तुष्ट होना चाहिए। “अब क्या, अब मैं पूर्ण हो गया”—यदि कोई ऐसा समझ ले तो यहीं से उसकी अवनति आरम्भ हो जाती है। अपने बारे में जो असन्तोष हो उसके लिए उसे दूर करने के लिए लगन, निष्ठा और ईमानदारी से

जितना बन पड़े करना चाहिए। असन्तोष की कोई सीमा नहीं है। हर व्यक्ति करोड़-पति और अरबपति बनना चाहता है। इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाते हुए एक विचारक ने ठीक ही कहा है—

“अगर सारी दुनिया और तमाम खजाने तुम्हारे हो जायें तो भी तुम्हें सन्तोष न होगा। असन्तोष की जड़ लालच है। लालच को समूल नष्ट करके ही सन्तोष मिल सकता है।

एक बार एक विद्वान् किसी राजा के दरबार में पहुँच गया। वस्त्राभूषण से वह सँवरा सजा नहीं था किन्तु वाणी के आभूषण से वह अवश्य सुशोभित था। राजा ने उस विद्वान् का अनादर किया। उसे वह सम्मान नहीं दिया जो कि एक विद्वान् को देना चाहिए। इस बात से वह विद्वान् बहुत क्षुब्ध हुआ। वह बड़े विनम्र स्वर में राजा से बोला—

‘हे राजन् ! माना कि आप बड़े धनवान हैं, ऐश्वर्यशाली हैं, लेकिन मैं भी आपसे कम नहीं हूँ। मैं बल्कल पहनकर ही सन्तुष्ट हूँ और आप रेशमी वस्त्र पहनकर। सबसे बड़ी बात संतोष की है। मैं दरिद्र नहीं जैसा कि आप समझते हैं। दरिद्र वह है जिसकी तृष्णा विशाल होती है। एक बार मन में संतोष आ जाने पर कौन धनी और कौन निर्धन।

राजा उस विद्वान् की बात सुनकर बहुत लज्जित हुआ।

संतोष के मार्ग में सबसे बड़ा अवरोधक है लोभ। लेकिन यह लोभ हटे कैसे ; इस सम्बन्ध में सिसरो का यह कथन हमारा मार्गदर्शन करता है—

“अगर तुम लोभ को हटाना चाहते हो तो तुम्हें उसकी माँ अय्याशी को हटाना चाहिए।”

समय

योगवासिष्ठ में कहा गया है—

‘आयु का एक क्षण संसार के सब रत्नों के देने पर भी नहीं मिल सकता । उस आयु को यदि कोई व्यर्थ ही में खोता है तो यह बहुत बड़ा प्रमाद है ।

समय अमूल्य होने के साथ ही साथ अत्यन्त गतिशील भी है । इसलिए जितना समय अपने पास है उसका सदुपयोग करना हमारा कर्तव्य है । हमें अपने कल्याण की बात आज ही कर लेनी चाहिए कल नहीं, क्योंकि कल कभी आता ही नहीं । कोई अच्छा काम आगे के लिए टालना भी नहीं चाहिए क्योंकि वृद्धावस्था में अपना शरीर भारस्वरूप हो जाता है ।

समय ही सम्पत्ति है । इसका सदुपयोग अथवा दुरुपयोग हमारे ही हाथ में है । बुद्धिमान लोग इसका सदुपयोग करते हैं और जो समय का मूल्य नहीं जानते वे इसे निन्दनीय कार्यों में बिताते हैं । हितोपदेश में कहा भी गया है—

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।

व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥

बुद्धिमान् व्यक्तियों का समय, काव्यशास्त्र के अध्ययन तथा दूसरे कल्याण के कार्यों में बीतता है किन्तु जो अज्ञानी व्यक्ति हैं उनका समय निन्दनीय कर्मों में, सोने में, लड़ाई झगड़ा करने में बीतता है ।

हमारे महापुरुषों ने समय के सदुपयोग के विषय में अनेक महत्त्वपूर्ण बातें बताई हैं । हम अपने जीवन में यदि समय को महत्त्व देते हैं तो निश्चय ही समय हमें भी महान् बना देगा । समय का एक-एक क्षण महत्त्वपूर्ण है ।

एक विचारक का कहना है—

“मान लो कोई व्यक्ति प्रतिदिन एक निश्चित समय पर सोता है और यदि वह चालीस वर्ष तक सात बजे के बजाय पांच बजे उठा करे, तो इससे उसकी उम्र में लगभग दस वर्ष की बचत हो जाएगी ।”

और वक्त की किफायत के बारे में ग्लेड्स्टन की उक्ति क्या कम महत्त्वपूर्ण है ?

‘मेरा विश्वास करो जब कि मैं कहता हूँ कि वक्त की किफायत भविष्य में

तुम्हें ऐसे प्रचुर लाभ से मुआवजा देगी, जो तुम्हारे सबसे अधिक आज्ञापूर्ण स्वप्नों से भी अधिक होगा और उसकी बर्बादी वैसे ही तुम्हारी काली से काली कल्पनाओं से भी अधिक बौद्धिक और नैतिक पतन में तुम्हें विलीन कर देगी ।”

बीता हुआ समय फिर नहीं आ सकता । इसीलिए डिकेन्स कहते हैं—“कोई ऐसी घड़ी नहीं बना सकता, जो मेरे गुजरे हुए घण्टों को फिर से बजा दे ।”

हज़ार वर्ष जो बीत गये हैं और हज़ार वर्ष जो आने वाले हैं इन सबसे बढ़कर वह समय है जो हमारे हाथ में है । यदि हम समय पर अपना काम करें तो अनेक संकटों से, अनेक समस्याओं से और अनेक व्याधियों से हम छुटकारा पा सकते हैं ।

समय बहुत बलवान् होता है । इसमें वही बच पाता है जो सत्य है । सत्य के सिवाय हर चीज को समय कुतर खाता है ।

हमें सदा समय पर ही काम करना चाहिए । एक विचारक ने बहुत ही अच्छी बात बतायी है—

“चिराग बुझ जाने पर तेल डालना, चोर के भाग जाने पर सावधान होना, पानी वह जाने पर बाँध बाँधना, ये सब व्यर्थ हैं । इसलिए समय पर ही सब काम करना चाहिये ।”

सुख

धृतराष्ट्र ने एक बार विदुर से पूछा था कि इस संसार में 'सुख' क्या है ?
विदुर ने अपने उत्तर में छः सुखों की बात कही—

अर्थागमो नित्यमरोगिता च,

प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च ।

वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या,

षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥

धन की प्राप्ति, सदा स्वस्थ रहना, प्रिय तथा मीठी बातें करने वाली पत्नी, आज्ञाकारी पुत्र और धन देने वाली विद्या । इस पृथ्वी लोक के ये ही छः सुख हैं ।

एक विचारक का कहना है "आधी दुनिया का ख्याल है कि सुख पाने और रखने तथा दूसरों से सेवा कराने में है परन्तु सुख है देने और दूसरों की सेवा में ।

गीता में सुख की तीन श्रेणियाँ बतायी गयी हैं—जिस सुख का आरम्भ विष की तरह, अन्त अमृत की तरह, जिससे आत्मा और बुद्धि को शान्ति मिलती है उसे सात्त्विक सुख कहते हैं । ४

इन्द्रियों का सुख जो आरम्भ में अमृत की तरह और अन्त में विष की तरह है वह राजस सुख है जो सुख आरम्भ से अन्त तक आत्मा को केवल मोह, नींद, आलस्य और सुस्ती में डाले रखता है, वह तामस सुख है ।

ऋषि मनीषी कहते हैं कि सन्तोष परम लाभ है, सत्संग परम गति है, विचार परम ज्ञान है और मन की शान्ति ही परम सुख है ।

सन्तोष इस सुख को पाने की सीढ़ी है । प्रायः इसीलिए लोग सन्तोष को ही सुख मान लेते हैं लेकिन संतोष मिलना बड़ा कठिन है ।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बड़े ही अच्छे ढंग से यह बात कही है—

"नदी का पहला किनारा निःश्वास लेकर कहता है सामने के किनारे पर ही तमाम सुख है, मुझे इत्मीनान है" नदी का दूसरा किनारा गहरी आँहें भरकर कहता है :

"संसार में जितना भी सुख है वह सब पहले ही किनारे पर है ।" वास्तव में सच्चा सुख बाहर से नहीं वह तो भीतर से ही मिलता है । लेकिन वह सुख मिलता कैसे है ?

जो किसी का बुरा नहीं चाहता और सबको समान दृष्टि से देखता है उसे हर तरफ सुख ही सुख मिलता है ।

गोस्वामी तुलसीदास ने क्षणमात्र के भी सत्संग के सुख को स्वर्गादि के सुख से ऊँचा बताया है ।

बात हनुमान के लंका में प्रवेश करने के समय की है । लंकिनी हनुमान से कहती है—

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिषअ तुला एक अंग ।

तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ॥

ज्ञानार्णव से संग्रहीत विचार

सत्पुरुषों की उत्तमवाणी दूसरों को जगाने के लिए सत्यासत्य के विवेक के लिए, लोक-कल्याण के लिए, जगत में शान्ति के लिए और जीवन में वास्तविक तत्त्व के उपदेश के लिए प्रवृत्त हुआ करती है।

जो मनुष्य वस्तुतः रत्नत्रय अर्थात् सम्यग् दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चरित्र को प्राप्त न कर ध्यान मार्ग में अग्रसर होना चाहता है वह आकाश के फूलों से वन्ध्या के पुत्र के लिए सेहरा अर्थात् मोर बनाना चाहता है। भावार्थ यह कि रत्नत्रय की प्राप्ति के बिना चित्त एकाग्र और शान्त नहीं हो सकती।

भगवान् जिनेन्द्र ने तत्त्व विषयक रुचि अथवा श्रद्धा को सम्यग्दर्शन, तत्त्व विषयक विशेष ज्ञान को सम्यग् ज्ञान और पाप कर्मों से निवृत्ति को सम्यक् चरित्र कहा है।

हिंसा अर्थात् दूसरे को पीड़ा पहुँचाना अथवा दूसरे के व्यक्तित्व का अनादर ही दुर्गति का द्वार है। हिंसा ही पाप का समुद्र है। हिंसा ही घोर नरक है हिंसा ही महान् अंधकार है।

अहिंसा ही जगत् की माता है। अहिंसा ही आनन्द का मार्ग है। अहिंसा ही उत्तम गति है। अहिंसा ही शाश्वती श्री या शोभा है।

संसार में प्राणियों के दुःख, शोक और भय के मूल में जो कुछ दुर्भाग्य आदि हैं, उन सबको हिंसा से ही उत्पन्न हुआ समझना चाहिए।

जो संयम से रहने वाला व्यक्ति धर्म का सहारा लेकर संयम की धुरी को धारण करता है वही वन में सत्य रूपी वृक्ष की यत्नपूर्वक रक्षा करता है। अर्थात् धैर्य और संयम के बिना मनुष्य सत्य की रक्षा नहीं कर सकता।

तराजू में एक ओर समस्त पापों को और दूसरी ओर असत्य से उत्पन्न हुए पाप को रखकर तोलने पर आर्य पुरुष दोनों को बराबर कहते हैं। अर्थात् असत्य अकेला ही समस्त पापों के बराबर है।

एक बार भी बोला हुआ असत्य चन्द्रमा की किरणों के समान निर्मल और उदात्त गुणों के समूह को नष्ट कर देता है अर्थात् असत्य वचन ऐसा मलिन होता है कि वह चन्द्र सद्गुण निर्मल गुणों को भी मलिन कर देता है। यह आत्मा साक्षात्

गुणरूपी रत्नों से भरा हुआ समुद्र है; यह सर्वत्र, सर्वदर्शी, सर्वत्र गति वाला, परम पद में स्थित और सब प्रकार की कालिमा से रहित है ।

जो कुछ इस संसार में विस्मय को उत्पन्न करने वाला सर्प, मनुष्य और देवताओं में उत्कृष्ट सामर्थ्य है, वह सब केवल आत्मा में ही स्थित है ऐसा मान कर हे मनुष्य ! तुम निश्चल चित्त होकर निरन्तर अपने आत्मा में ही विश्वास करो !

समस्त जगत् को अपने प्रभाव से प्रभावित करने वाली इस आत्मा की स्वाभाविक शक्ति साधारण अवस्था में छिपी हुई रहती है । प्रज्ज्वलित किया हुआ विज्ञान का प्रदीप उसको दल पूर्वक प्रकट कर देता है ।

अर्थात् आत्मा की अपनी स्वाभाविक शक्ति बड़े प्रभाव वाली होते हुए भी साधारणतया छिपी रहती है । ज्ञान और विद्या द्वारा ही उस महान् शक्ति की अभिव्यक्ति की जा सकती है ।

८०

म पद

ताओं

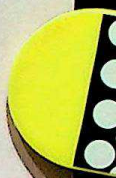
ष्य !

स्वा-

वज्ञान

ए भी

अभि-



नलवार



डॉ० आशाराम त्रिपाठी

जन्म :

10 दिसम्बर, 1941, ग्राम—शिववंशी का पुर,
जनपद—इलाहाबाद (उ० प्र०)
सम्प्रति—प्रोड्यूसर, आकाशवाणी, लखनऊ.

शिक्षा :

एम० ए० (संस्कृत), एम० ए० (हिन्दी), डी० फिल०,
प्रोफिसिएंसी इन जर्मन

प्रकाशित कृतियाँ :

- (1) 'चिवकूट शतक' (खण्ड काव्य), 1971-72, (2) 'चतुर्दशी' (राष्ट्रगीत) 1973, (3) 'यज्ञ और याज्ञवल्क्य' 1983, (4) 'जि गर्भा' 1987, (5) याज्ञवल्क्य और वैदिक यज्ञ परम्परा 1983, (6) 'जरा सी धूप' (कविता संग्रह) 1988, (7) 'बिचार-गंगा' 1991, (8) 'दरद अपना-अपना' (कविता संग्रह) 1991

उपलब्धियाँ :

- (1) 'निराला पुरस्कार (विशेष)', 1972-73
- (2) उ० प्र० संस्कृत अकादमी पुरस्कार, 1989
- (3) सांस्कृतिक मोहादं-याज्ञा-जर्मन जनवादी गणराज्य, 1984